UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182453

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 81·6 | P18H Accession No. GH·1155

Author पाण्डेय, उमाशंकर

Title हल्दी घाटी | 1941

This book should be returned on or before the date last marked below.

हल्दी घाटी

वीर-रस-प्रधान

आ

दि

महाकाव्य

निर्माता

श्रीश्यामनारायण पाण्डेय

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९४१

Checked 1965

Printed and Published by K. Mittra,
at The Indian Press, Ltd., Allahabad

Checked 1969

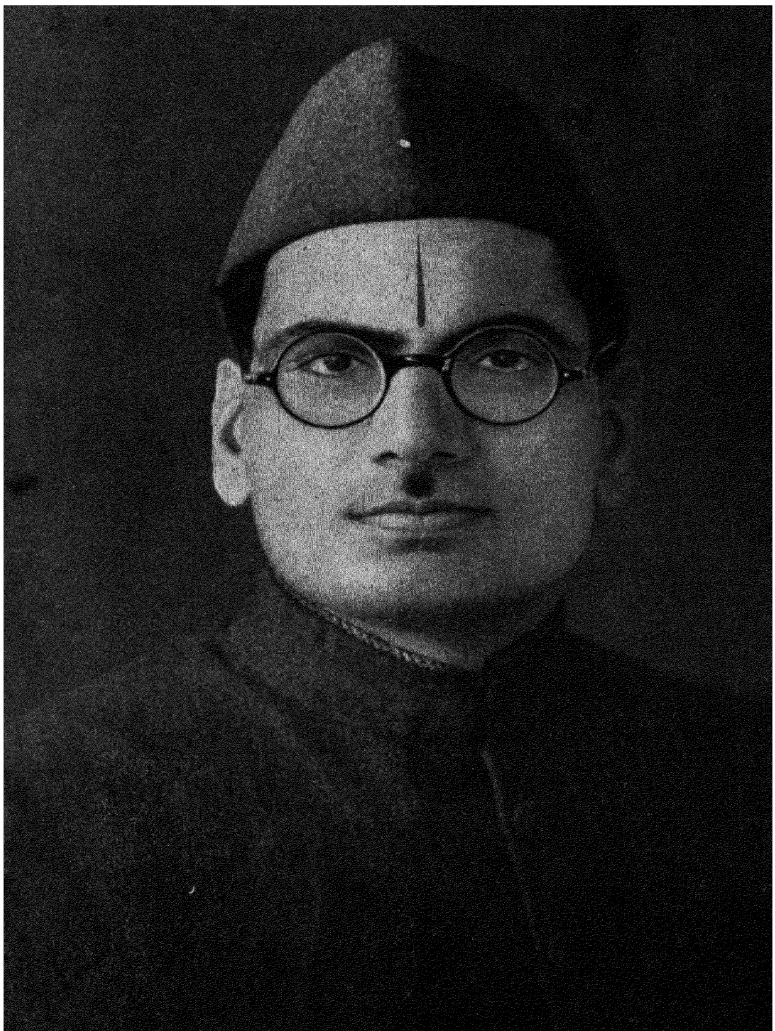

राय साहब पंडित श्रीनारायणजी चतुर्वेदी, एम० ए० (लंदन)

आ द र णी य

पण्डित श्रीनारायण

च तु र्वे दी

'श्रीवर'

को

हल्दीघाटी का इतने अल्पकाल में दूसरा सस्करण हो जाना कोई आश्चर्य नही है। मै पाठको को इस सुरुचि के लिए धन्यवाद देना कर्त्तव्य नही समझता। मैं लिखने के पहले इस बात को जानता था कि यह वस्तु उनकी है, इसको अपनाने के लिए वे अवश्य बाध्य होगे क्योकि अब भी उनकी रगो मे पूर्वजो का गरम नही तो ठण्डा रक्त प्रवाहित होता रहता है और होता रहेगा। कौन ऐसा कपूत होगा जिसका वक्ष.स्थल अपने गत गौरव पर क्षण भर के लिए उन्नत नही हो जायेगा। हाँ, यह बात उनके लिए लागू नही हो सकती जिनके रक्त-वीर्य मे ही सन्देह है।

प्राचीनकाल मे जब मधुर व्रजभाषा का बोलबाला था, बराबर सुकुमार कल्पनाओ और कोमल पदावलियो मे देवी का शृङ्गार हो रहा था, अनेक वादों के इस सघर्ष-युग मे भी शृङ्गार की सामग्रियो की प्रचुरता से देवी ऊब रही थी, मुझे कवियों की शृङ्गारप्रियता असह्य हो गई। मैं प्रताप के साथ चल पड़ा, काई की तरह फटकर वादों ने मार्ग दे दिया, मै देवी के निकट था। माँ ने पूछा, तेरे हाथो मे क्या है? मैने कहा, तलवार। माँ आश्चर्य से बोल उठी, ऐं, तलवार! मैने कहा, हाँ देवि, तलवार, राणा प्रताप की। इस परतन्त्र और भिखमंगों के देश मे तेरे शृङ्गार से मुझे घृणा थी और दुःख था, इसलिए तेरे शृङ्गार के लिए

रक्त से रँगी हुई यह चुनरी, शोणित की गगा मे स्नान की हुई यह तलवार और वायु-गति यह चेतक, लाया हूँ। स्वीकार है ? माँ की आँखों मे स्नेह उमड रहा था। मुस्कराकर कहा, हाँ। वीर कविता मुँह-मुँह बोल उठी।

कुछ नीर-क्षीर-विवेचको ने मेरी उन त्रुटियो की ओर इगित अवश्य किया है जिनका ज्ञान मुझे लिखन के समय से ही है। अवसर पाते ही मै उन्हें सँभालने का प्रयत्न करूँगा, इस बार तो मुझे बिलकुल समय ही नही मिला इसलिए पुस्तक मे अधिक सुधार न कर सका।

हल्दीघाटी मे कुछ मेरे उन प्रिय शब्दो का प्रयोग हो गया है जिन्हे मै माँ की गोद से ही बोलता आ रहा हूँ, मुझे वे अत्यन्त प्रिय है और अपने देश के है। जब हल्दीघाटी की रचना मेरी ही लेखनी-द्वारा हुई है तब उनका इसमे रहना स्वाभाविक ही है और उनको समझने के लिए किसी कोष की भी आवश्यकता नही पडती। वे अत्यन्त बोधगम्य है. इसलिए उनका निकालना आँखे निकलवा लेने के बराबर है। रह गये मुहाविरे और व्याकरण, सो मुहाविरे तो वातावरण के अनुसार बनते और बिगड़ते रहते है। किसी जगह एक मुहाविरा बोला जाता है, किसी जगह दूसरा। व्याकरण के बारे मे इतना ही कहना उपयुक्त है कि---

"नैको मुनिर्यस्य वच· प्रमाणम्।"

फिर समालोचको की आकांक्षा की पूर्ति सब बातो मे कहाँ तक हो सकती है। हाँ, दो-एक स्थलो पर 'वचन' की एकता और अनेकता का ख्याल मैंने इसलिए नही किया कि प्रवाह-भग होने का भय था। मै पहले ही से इस बात की चेष्टा मे था कि हल्दीघाटी के छन्द निर्झर की तरह अबाध गति से बहते रहे। उनमे वह बिजली पैदा हो जिससे मुर्दों की भी भुजाये फड़कने लगे, उनमे वह 'टानिक' उद्भूत हो जिससे पढ़नेवालो का खून बढ़ने लगे और वह प्रकाश फूट पडे जिससे एक बार सारा राष्ट्र जगमगा उठे। अस्तु।

हिन्दी-साहित्य मे हल्दीघाटी का प्रचार मेरे अनुमान के बाहर होता जा रहा है। इसका श्रेय राणा प्रताप को और उनके साथियो को है। मैने तो उनके कर्त्तव्यो के कुछ चित्र जनता के सामने रख दिये है, इसलिए नही कि पुस्तक पढ़कर लोग ऊँघने लगे बल्कि इसलिए कि ऊँघते हुओं की आँखे खुल जायें।

हल्दीघाटी लोकप्रियता ढूँढती हुई नही आई बल्कि उसे इस बात का पूरा विश्वास था कि मेरा स्पर्श पाठकों को विद्युद्धारा के स्पर्श से कम आकर्षक न होगा और एक बार फिर राजपूतो की निद्रित वीरता ताड़ित सर्पिणी की तरह फुफकार उठेगी और जौहर की ज्वाला से देश प्रज्वलित हो उठेगा। लेकिन, खेद, डरपोक हिन्दुओ मे न वैसी जागृति ही मिली न वैसा जोश ही।

राजपूतो की वीरता अब कहानी-सी रह गई है, कहने-सुनने के लिए। अपनी वीरता का सम्मान स्वय राजपूत ही नही कर सके, और तो और।

ओरछा-नरेश श्रीमान् वीरसिंह जू देव ने गत वर्ष हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ २०००) का देव-पुरस्कार देकर हल्दीघाटी का क्षत्रियोचित सम्मान किया था। इस क्षत्रियोचित कार्य की प्रतिक्रिया केवल शाब्दिक धन्यवाद मे पर्यवसित नही रह जाती प्रत्युत उनके प्रति मेरा हृदय कृतज्ञता से परिपूर्ण है।

श्री माधव-सस्कृत विद्यालय (सारग, कार्शी) के प्राण सुहृद्वर श्रीयुत ब्रजमोहनदास जी केजरीवाल का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, जिनकी छाया मे मैने हल्दीघाटी का निर्माण किया और महारानी 'पद्मिनी' पर दूसरी पुस्तक भी लिख रहा हूँ।

शुभम्

समाधि के समीप से

रामनवमी
१९९६

कवि

प्रताप ! आज सात वर्षों से तेरी पवित्र कहानी गा-गाकर सुना रहा था, मोह होने पर भी आज उसे पूर्ण कर रहा हूँ। मुझे इसमें क्या सफलता मिली, मैंने साहित्य-देश-धर्म की क्या सेवा की, मैं नहीं कह सकता। यह तो तूही बता सकता है कि मेरी 'हल्दीघाटी' और तेरी 'हल्दीघाटी' में क्या अन्तर है।

वीरशिरोमणि ! तेरी अक्षुण्ण वीरता, धर्मनिष्ठा, कर्त्तव्य-परायणता और देश-सेवा ही नहीं, बल्कि चंचलगति चेतक घोड़े का हवा से बातें करना, चंडिका की जीभ की तरह लपलपाती हुई रुधिर-प्रसविणी तलवार का बिजली की तरह गिरना, रक्त-तृषित तीव्र भाले का ताण्डव, झाला-मान्ना और मानसिंह प्रभृति सरदारों का आत्मविसर्जन, वीर सिपाहियों का आजादी के लिए खेलते खेलते हल्दी-घाटी के महायज्ञ में आहुति बनकर स्वाहा हो जाना, भूख और प्यास के मारे तड़पते हुए तेरे बच्चों का करुण-क्रन्दन और तेरा प्राणों के दीपक के उजियाले में वन-वन पलायिता स्वतन्त्रता का टोह लगाना आज भी आँखों के सामने सिनेमा-फिल्म की तरह खिंचा हुआ है।

मेरे सेनापति ! क्या तू नहीं जानता था कि मुग़ल-सम्राट् अकबर तुझको निगल जाना चाहता है ? क्या तुझको नहीं मालूम था कि अपने गौरव और अभिमान को लात मारकर कितने राजपूत महीप मुग़लों की चरण-सेवा कर रहे हैं ? तू खूब जानता था कि अम्बराधिपति ने सोने-

चाँदी के टुकड़ो पर मर्यादा बेचकर अपनी कन्या की शादी अकबर के साथ कर दी है। तुझे अच्छी तरह मालूम था कि बीकानेर के नरेश अकबर की छत्रच्छाया मे विश्राम कर रहे है। बूँदी ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली है और अजमेर ने अपने को अकबर के हाथो मे सौप दिया है। माँ के पैरो मे पराधीनता की बेड़ी पड़ी हुई है। यही नही, तू यह भी जानता था कि विद्वेष की आग मेरे घर मे ही लगी हुई है। लिखते कलम काँपने लगती है, हृदय विदीर्ण होने लगता है। तुझे अच्छी तरह मालूम था कि एक ही माता के, एक ही गर्भ से जनित, सहोदर शक्तसिह मुगलो की आराधना से दूर नही है, भाई सागरसिह अकबर के दरवाजे पर रोटी के एक टुकडे के लिए कुत्ते की तरह दुम हिला रहा है।

वीर सैनिक! लेकिन तुझे इसकी दहशत नही थी, स्वाधीनता के सामने टिड्डी-दल का भय नही था, तुझे तो आगे बढने का अभ्यास था। तूने किसी भी युद्ध में एड़ी की जगह अँगूठा नही दिया। गरजती हुई तोपो के विकराल मुखो से धायँ-धायँ गोले बरसते हो, छप-छप करती हुई तलवारे क्रुद्ध नागिनो की तरह फुफकार रही हों, भाले-बरछों के भयावह प्रकाश मे चकाचौंधे लग रही हों, प्रति-द्वन्द्वी की सेना विजय की आशा से कराहती लाशों के सीनो को रौदती हुई बढ़ती चली आ रही हो, रण-क्षेत्र में हाहा-कार मचा हो किन्तु तेरे चेतक को रोकने की शक्ति पैदा ही नही हुई थी। वह तो तब तक अविराम-गति से बढ़ता था जब तक फलाफल का निर्णय न हो जाय।

वीर-पुंगव! धन-लोलुप विलास-प्रिय स्वार्थी संसार को देखकर कदाचित् तुझे अपनी सेना पर भी पूरा विश्वास नही था; यदि विश्वास था तो केवल एकलिग महादेव की कृपाकोर का, स्वामि-भक्त चेतक का, रक्त पी-पीकर वमन कर देनेवाली तीखी तलवार का, आत्मबल का, अपने शोणित-अभिषिक्त सिहासन का और शिशोदिया-वंश के पूर्वजों के आशीर्वाद का।

मेवाड़-सिंह ! तू कहा करता था कि मेरे और राणा साँगा के बीच यदि कायर उदयसिंह का जन्म नहीं होता तो मेवाड को ये बुरे दिन न देखने पड़ते। बात सच थी। मेवाड के पवित्र सिंहासन को अपनी कायरता और भीरुता से यदि उदयसिंह कलंकित नहीं करता तो आज इतिहास के पृष्ठो पर कुछ और ही बात होती। उदयसिंह ने राजपूत-वंश के लिए निन्द्य और दब्बू स्वभाव का ही परिचय नहीं दिया, बल्कि वह जगमल को अपना उत्तराधिकारी बनाकर एक बहुत बड़ा अनर्थ भी कर गया, किन्तु सरदार लोग राष्ट्र का यह तिरस्कार अधिक दिन तक नहीं सहन कर सके, जगमल की कापुरुषता और विलास-प्रियता मेवाड़ के उज्ज्वल मुख पर कालिख नहीं लगा सकी। एक दिन सरदारो ने अचानक उसके सिर से मुकुट और तलवार छीनकर जयनाद और करतल-ध्वनि के बीच तुझे राज-मुकुट पिन्हाया और हाथ मे तलवार देकर मेवाड-गौरव की रक्षा के लिए प्रार्थना की। इच्छा न रहने पर भी अभिरक्षण का भार तुझे स्वीकार करना पड़ा। सरदारो के मुखमण्डल पर प्रसन्नता प्रस्फुटित हो गई और मेवाड़ का सिंहासन गर्व से फूल उठा।

पतझड के बाद वसन्त आया। निद्रित देश नवीन उत्साहो के साथ जाग गया, तलवारें म्यान के भीतर ही तडप उठी, कंचुल छोडकर फुफकारते हुए नागो के समान मुरचे-रहित भाले और बरछे चमक उठे, हथियारो ने झन-झन के भयकर स्वर मे वैरी को रण-निमन्त्रण दिया और गिरिराज अरावली का एक-एक कण जय-निर्घोष कर उठा। वह थी तेरे राज्याभिषेक की पुण्य-तिथि।

राष्ट्रपति ! तूने राज-लक्ष्मी नहीं प्राप्त की. बल्कि तुझे अपनी वीरता परखने के लिए एक कसौटी मिल गई। तूने उसी दिन राजपूत सरदारो के सामने प्रतिज्ञा की कि "जब तक मेरी रगो मे रक्त प्रवाहित होता रहेगा धर्म को तिलाजलि नहीं दे सकता, वैभव के लोभ से शिशोदिया-कुल को कलंकित नहीं कर सकता, क्षणिक सुख की लालसा से

माँ के पवित्र दूध का तिरस्कार मुझसे नहीं होगा और भगवान् एकलिंग को छोड़कर संसार के किसी भी सम्राट् के सामने मेवाड़ अपना मस्तक नहीं झुका सकता। चाहे जो हो, कोई साथ दे या न दे, मुझे इसकी चिन्ता नहीं। मैं युद्ध करूँगा—प्राण रहते शिशोदिया-वंश के हाथ से स्वाधीनता न जाने दूँगा; पराधीनता की बेड़ी में रहना मुझे स्वीकार नहीं है।"

वीरवर! तेरी प्रतिज्ञा सुनकर म्यानों से एक साथ सहस्रों तलवारें निकल पड़ीं, सरदारों ने आगे बढ़कर कहा "पराधीनता की बेड़ी में रहना स्वीकार नहीं है।" जनता ने हर्षध्वनि के साथ जय-निनाद किया और राज्याभिषेक का उत्सव समाप्त हो गया। वह भीष्म-प्रतिज्ञा अनेक जंगलों, पहाड़ों और नदियों को पार करती हुई अकबर के कानों में गाज की तरह गिरी। दिल्ली का सिंहासन भय से काँप उठा।

महाराणा! तेरा प्रबल और सहृदय-प्रतिद्वन्द्वी अकबर बड़ा ही प्रतिभा-सम्पन्न और कूटनीतिज्ञ था। उसने छोटे-बड़े अनेक राजाओं को मिलाकर अपने साम्राज्य को सुदृढ़ और सुव्यवस्थित बना रक्खा था। उसके उदय होते ही सभी नक्षत्र अस्त हो गये थे, केवल एक ही नक्षत्र तू शत-शत प्रकाश से चमक रहा था। वह चाहता था अपने तेज से तेरी दिव्य ज्योति बुझा देना, वह चाहता था अपने वैभव और प्रताप से तेरा उन्नत मस्तक झुका देना, वह चाहता था अपनी असख्य वाहिनी द्वारा मेवाड़ को ध्वंस करना और तुझे अपनी आँखों से पराजित देखना; लेकिन क्या उसका यह स्वप्न नहीं था? यदि उसे अपने विशाल साम्राज्य का अभिमान था तो तुझे भगवान् एकलिंग का गर्व था, यदि वह सेना-मद से मतवाला था तो तू देश-सेवा के लिए पागल था, यदि उसमें तुझ पर विजय प्राप्त करने की शक्ति थी तो तुझमें अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करने की लगन थी, यदि वह राष्ट्र-निर्माता बनने के लिए उद्योग-शील हो रहा था तो तू बाप्पा रावल के गौरव की रक्षा के

लिए चिन्तित हो रहा था। जो हो, किन्तु तू उसे खटकता था और तेरी स्वतन्त्रता उसे अखर रही थी। वह मौका ढूँढ़ रहा था तुझ पर चढ़ आने का और प्रतीक्षा कर रहा था मेवाड़ के किले पर अपनी विजय-वैजयन्ती फहराने की। उसे अधिक दिन तक राह नहीं देखनी पड़ी, समय ने उसे अवसर प्रदान कर ही दिया।

धर्मवीर! उदयसागर के तट पर धर्म-पतित मानसिंह का तूने इसलिए तिरस्कार किया कि वह अपने साथ तुझको भी भोजन कराकर धर्म-च्युत बनाना चाहता था और अपने व्यक्तित्व से तुझे प्रभावित करना चाहता था। उदयसागर का भग्नावशेष अब भी उसके नाम पर थूक रहा है, क्योंकि वह अपने ही भाइयों के रक्त से सींचकर मुगल-साम्राज्य का शरीर पुष्ट कर रहा था। उसे अपने ही देश के शोषण में आनन्द मिल रहा था, वह राजपूत-कुल-गौरव को पद-दलित करके अपनी ही जड़ खोद रहा था और अपने उदार धर्म को उपाधियों के हाथ बेच रहा था।

अपने दक्षिणबाहु मानसिंह की अवज्ञा से अकबर बौखला उठा, उसने तुरन्त मानसिंह को एक विशाल सेना देकर मेवाड़ को श्मशान बनाने के लिए भेजा। दलबल सहित मानसिंह ने खमनौर से थोड़ी दूर पर रक्ततलैया के निकट शाहीबाग में अपना पड़ाव डाल दिया, जहाँ पहाड़ों के झरने अपने कलकल-स्वर में उसके इस नीच कर्म के लिए धिक्कार रहे थे।

सूरमा! भला तू कब अवसर चूकनेवाला था। पहले ही से हल्दीघाटी के समीप एक मनोहर उपत्यका में बाईस हजार सिपाहियों को लेकर शत्रु की बाट देख रहा था और अरावली की उन्नत चोटी पर गर्वपूर्ण केसरिया झंडा फहर रहा था। तेरी सेना में हिन्दू मुसलमान दोनों सम्मिलित थे, समर-यज्ञ में दोनों अपने प्राणों की आहुतियाँ देकर जननी जन्मभूमि की रक्षा करना चाहते थे। इसी से कहा जाता है कि हल्दीघाटी का युद्ध साम्प्रदायिक युद्ध नहीं था, बल्कि अपने-अपने सिद्धान्तों की लड़ाई थी।

कर्मवीर ! जहाँ तेरे वीरो की सशस्त्र टोली ठहरी थी उसके चारो ओर दुर्भेद्य पहाडो की ऋङ्खलायें प्राचीर की तरह खड़ी है । उनके उत्तुङ्ग शिखरो पर पुजा के नेतृत्व मे कोल-भील धनुष-बाण लेकर पैतरे बदल रहे थे । उन्ही गगन-भेदी पहाड़ो के बीच से पतली लकीर की तरह एक राह निकलती है जो तीर्थ के समान पवित्र हल्दीघाटी के नाम से प्रसिद्ध है, वह गिरिपथ इतना भयावह है कि उसके विषय मे एक किवदन्ती अभी तक चली आती है कि मरे हुए सैनिक प्रेत होकर रात्रि की नीरवता मे अब भी युद्ध करते है और उनके मुंह से 'मारो-काटो' के निकले हुए भयद शब्द पहाडों मे चक्कर खाते, टकराते और गूँजते हुए आकाश मे विलीन हो जाते है ।

महापुरुष ! तेरा हृदय कही हीरे की कनी और पहाड की चट्टान की तरह कठोर था और कही शिरीष कुसुम और गुलाब के फूल के समान कोमल । जब दोनो सेनाये अपने अपने पडाव पर एक-दूसरे के आक्रमण की प्रतीक्षा कर रही थी, एक दिन मानसिह पहाड़ो और जगलो के मनोहर दृश्य देखकर टहलने के लिए लालायित हो उठा । घूमने चला । आषाढ़ का लवन्दर पड़ा हुआ था, पृथ्वी का तप्त हृदय शीतल हो गया था, वह धीरे-धीरे साँस ले रही थी, दिशायें सुरभित हो रही थी, ठढी हवा मन्द-मन्द बह रही थी और मानसिह एक नाले के किनारे से पर्वतीय जगलो की ओर बढ़ रहा था । वह वृक्षो के पल्लवों पर अकित तेरी अमर कीर्ति और अपनी अपकीर्ति पढ रहा था, नदियो, नालों और झरनो की कलकल ध्वनि मे तेरा गौरव-गान और अपने तिरस्कार के तराने सुन रहा था, विविध पक्षियो की रागिनियो मे तेरे गुणो की गाथा और अपने अवगुणो की कहानी सुन-सुनकर ऊब रहा था और दूर समागत हिस्र जन्तुओ की गर्जन मे तेरी दहाड और अपना चीत्कार सुनकर व्याकुल हो रहा था। वह लौटना ही चाहता था कि भीलो की अनेक आँखे उसके ऊपर पड़ी । उसने भी भयभीत आँखो से भीलो को देखा । शरीर मे बिजली दौड गई । एक दृष्टि

आकाश की ओर डाली, पृथ्वी की ओर देखा, फिर आगे पीछे दाये बाये दीवार की तरह खड़े गगनचुम्बी पहाडो पर याचना की कातर आँखे फेरी, किन्तु शरण देने से सबने इनकार कर दिया। चिल्लाने का यत्न किया, किन्तु गला रुँध गया, भागने की इच्छा की किन्तु पैर बँध गये. उडने की अभिलाषा हुई किन्तु पख नही थे। आँखे मूँद ली। भीलो ने उसे पकड लिया और उसके हाथ-पैर बाँध दिये।

उदारचेता! तू उसी समय कुछ विश्वस्त सिपाहियो के साथ एक दरी से निकला, भीड देखकर पलक भाँजते वहाँ पहुँच गया। देखा मानसिह बन्धन में है, लज्जा और दु ख से झुकी हुई उसकी आँखे पृथ्वी पर कुछ खोज रही है। तूने झट बन्धन खोलकर कहा—"भीलो! यह कायरता है, युद्ध नही, धोखा है विजय नही, लघुता है गौरव नही। तुम्हारी वीरता की परीक्षा तो भावी महासमर मे होगी, जब तुम्हारी युद्ध-कला देखकर भेडो और बकरियो की तरह भागते हुए वैरी दिल्ली पहुँच जायँगे। तुम मानसिह से क्षमायाचना करो और प्रेम सहित विदा दो।' महाराणा की जय के निनाद से पहाड गूँज उठा और दरियो ने उसे दुहरा दिया।

महारथी! सावन का महीना था, आसमान पर घटा लगी हुई थी, भासमान आँखे मूँदकर सो रहा था, दोनो सेनाये युद्ध के लिए खड़ी थी, मेघाच्छन्न आकाश मे कभी-कभी बिजली चमक जाती थी, इधर तलवार। तू चेतक पर चढ़कर सेना का सचालन कर रहा था, उधर हाथी पर चढकर मानसिह। बादल ने कड़ककर कहा—'युद्ध आरम्भ करो'। देर न थी, 'हर हर महादेव' के निनाद से नीरव वातावरण कोलाहलमय हो गया। तेरे वीर सैनिक दूने उत्साह से मुगल-सेना पर टूट पडे। मरने-कटने की बान पुश्तैनी थी। प्राणो की रचक परवाह न कर, रणमत्त वीर मुग़लो को गाजर मूली की तरह काटने लगे। क्षण भर पहले जो पृथ्वी घिरे हुए बादलो से पानी की आशा रखती थी, उस पर उससे भी अधिक मूल्यवान् शोणित तीव्र गति से बहने लगा। लहू-दे ा-देखकर राजपूतो की हिसा-

वृत्ति और भी अधिक जागरित होती जाती थी । वे एक-एक कदम आगे ही बढते थे । मुगल-दल विस्मित और चिन्तित हो उठा ।

समरकेसरी ! तू चपलगति चेतक पर सवार होकर आगे-पीछे इधर-उधर सब ओर विद्यमान था । तू अपने अभ्यस्त हाथों की तीक्ष्ण तलवार से लोथों पर लोथे लगा रहा था, दुधारी की चोट खा-खाकर वैरी धराशायी हो रहे थे । तू एक क्षण में सहस्रो के शिर धड़ से अलग कर देता था, तेरी भीषण मूर्ति और अदम्य उत्साह देखकर तेरे वीर सैनिकों ने प्राणों का मोह छोड़ दिया था । बड़ा भीषण युद्ध था ।

वीर-हृदय ! कुछ देर तक शत्रुओं ने बड़ी मुस्तैदी के साथ सामना किया, किन्तु तेरा रण-कौशल देखकर उनके धैर्य का बाँध टूट गया । अड़े रहने की चेष्टा करने पर भी क्रम बिगड गया । भागने के सिवा और कोई चारा नहीं था । जान लेकर भगे । तूने बनास नदी के उस पार तक पीछा किया किन्तु हाय, इस तरह तेरी सेना मैदान मे आगई । उधर भागते हुए मुगल, मानसिह के सतत प्रयास मे लौट पडे । फिर युद्ध आरम्भ हो गया ।

नरसिह ! इस बार शत्रओ ने आग बरसानेवाली तोपो से वार किया, धायँ-धायँ गोले बरसने लगे, रण-क्षेत्र मे चिनगारियाँ उडने लगी, धुएँ के अन्धकार से समर-भूमि भयानक हो गई किन्तु तेरे राजपूतो को यह बाधा अणुमात्र भी विचलित नही कर सकी । तूने तोपो के मुँहों को फेरने का आदेश दिया, वीर पागल हो गये, स्वाधीनता के लिए जान सस्ती पड गई । भनभनाते हुए गोले आकर सीने में घुस जाते थे, लेकिन वे बढ़ते थे, तोपो से निकली हुई अग्नि की ज्वाला शरीर को झुलस देती थी, लेकिन वे आगे ही बढ़ते थे, उडती हुई चिनगारियों के गिरने से अग-अग जल रहा था, लेकिन वे बढते जाते थे, फफोले फूट-फूटकर बह रहे थे लेकिन वे बढ रहे थे और कराहते हुए म्रियमाण सगे भाई-बन्धु आँखों के सामने तड़प रहे थे लेकिन वे

अपने अभ्यास के अनुसार आगे ही बढ़ रहे थे । वाह री ! स्वतन्त्रते ! तुझमे कितना आकर्षण है, तू अभी कितनी दूर है ।

घायल सिह की तरह वीर राजपूत बढ़ते ही गये, एक-एक फाल बढते ही गये, मरते-मिटते अपने लक्ष्य तक पहुंच कर विकट तोपो के विवृत उग्र मुखों को विपरीत दिशा की ओर फेर दिया, मेवाड़ सिह खूँखार भेड़ियों की तरह शत्रुओ पर टूट पडे, जीवन का सौदा सस्ता हो गया ।

विश्ववीर ! भाले-बरछो से फिर मुठभेड हुई, घमासान युद्ध आरम्भ हो गया, हाथियों ने हाथियो पर, घोडो ने घोड़ों पर और सवारो ने सवारों पर बड़ी तीव्रता से आक्रमण किया। दोनो दलो के वीर सैनिक एक दूसरे के खून की प्यास से व्याकुल हो रहे थे, रुण्ड-मुण्ड से मेदिनी पटने लगी, कही घोडे भाग रहे थे, कही हाथी चिग्घाड रहे थे, कही लाशो पर लाशे बिखर रही थी; कभी लहू की बाढ से मुरदे बह जाते थे तो कभी शोणित के वेग से पृथ्वी कट जाती थी । बडी भीषण मारकाट थी । हार-जीत का पता नही था । विजय हिडोल पर थी, कभी इधर कभी उधर । बडा लोम-हर्षण सग्राम था प्रताप !

महाकाल ! दोनो दलो मे हाहाकार मचा हुआ था, खून पर खून हो रहे थे, किन्तु तेरी समरान्ध आँखे किसी और को खोज रही थी । हाथ का प्रलयकर भाला किसी विशेष वैरी को ढूँढ रहा था और तेरा तेजस्वी चेतक किसी अन्य शत्रु के अन्वेषण मे लगा हुआ था । वह था देश-द्रोही मानसिह । जिसकी तलवार अपनी ही जाति के रक्त की प्यास से व्याकुल हो रही थी, जिसको मेवाड की स्वतन्त्रता खटक रही थी, जिसको अपनी जाति का गौरव अखर रहा था और जिसका हृदय हिन्दुत्व को मिटाकर ही सन्तुष्ट होना चाहता था ।

प्रतापी प्रताप ! अचानक तेरी दृष्टि उस रणमत्त हाथी पर पड़ी जिस पर बैठकर वीर सैनिको से घिरा हुआ मानसिह अपनी सेना का सचालन कर रहा था । तेरे शरीर का रक्त उबल उठा और क्रोध की ज्वाला से देह जल उठी ।

चेतक उड़ा और शत्रु-सेना को रौंदता हुआ हाथी के समीप जा धमका क्षण भर लड़ा, फिर अपने अगले पैर हाथी के कुम्भ-स्थल पर जमा दिये। भाला गोहुवन की तरह मानसिंह की ओर लपका फीलवान हाथी से गिर पड़ा और उस मुरदे को सिपाहियों ने कुचलकर चूर कर दिया। बिना महावत के हाथी चिंघाड़कर भाग गया। मेवाड़ के दुर्भाग्य से मानसिंह की रक्षा हुई। बड़ा भयंकर समर था।

राणा प्रताप! मानसिंह तो बच गया लेकिन तेरे ऊपर असंख्य मुगल टूट पड़े। सर्पों में गरुड़ की तरह तू अपनी दुधारी से शत्रुओं को काटने लगा किन्तु वे रक्तबीज के समान घटते नहीं, बढ़ते ही थे। तू शत्रु-सेना से निकलकर अपनी सेना में आ जाना चाहता था, लेकिन उस कठिन व्यूह से निकल जाना सरल नहीं था। दिन भर काटते काटते तेरी तलवार थक गई थी, चेतक शिथिल हो गया था और तेरी देह घावों से छलनी हो गई थी। उससे निर्झर की तरह रक्त बह रहा था, तो भी तू बड़े उत्साह से मुगलों को यमपुरी का मार्ग दिखा रहा था। मेवाड़ का झण्डा शोणित से रक्त हो गया था और महामृत्यु तुझे अपनी गोदी में बिठाने का प्रयास कर रही थी। उसी समय मेवाड़ के सौभाग्य से शत्रुओं के शिर पर अपना घोड़ा दौड़ाता हुआ झाला मान्ना वहाँ पहुँच गया। उसने तेरे शिर से छत्र और हाथ से झण्डा छीन लिया। शत्रुओं ने उसे ही महाराणा समझा और चारों ओर से घेर लिया। तू बचकर निकल गया। झाला मान्ना की तलवार बिजली की तरह तड़प-तड़पकर शत्रुओं पर गिरने लगी, मुगलों की लाशों का पहाड़ लग गया, लेकिन असंख्य तलवारों के प्रकाश में एक तलवार की ज्योति ही कितनी! झाला मान्ना के शिर से मेवाड़ का छत्र गिरा और वहीं लाशों के बीच कहीं छिप गया। मेवाड़ का झण्डा गिरा और रक्त से लथपथ हो गया। अर्धमृत झाला मान्ना ने एक बार किसी तरह उसे उठाया, लेकिन क्षण भर के बाद फिर गिरा और वहीं झाला मान्ना के मृत शरीर से कफन की तरह लिपटकर सो गया।

प्रतापसिंह! मेवाड़-प्राण झाला मान्ना स्वदेश महायज्ञ

मे अपने प्राणो की आहुति देकर मुक्त हो गया। उसकी अमर कीर्ति से यह निखिल सृष्टि सुरभित हो गई। मुगल-दल विजय-गर्व मे उन्मत्त हो उठा। लेकिन विजय किसकी हुई, उसको तो उस दिन की घिरी हुई घटा ही बता सकती, जिसने बिजली की आँखो मे बार-बार देखा था।

अमर प्रताप! तेरी हल्दीघाटी के बलिदानो ने ससार के सामने एक ऐसा आदर्श रख दिया जिसकी कल्पना मे ही देह पुलकित हो जाती है और आँखे सजल। थर्मापोली के समर मे इतनी शक्ति कहाँ, जो तेरे महासमर की समता करे।

दयासागर! जब हल्दीघाटी के महायुद्ध मे जीवन दूर और मृत्यु निकट होती जाती थी तभी एक राजपूत पहाड की चोटी पर बैठकर मृत्यु-पीडा मे तडपते हुए अपने सगे भाई-बन्धुओ को देख रहा था, सपूतो का अमर बलिदान देख रहा था और देख रहा था मेवाड-गौरव की रक्षा के लिए राजपूतो का आत्म-विसर्जन। वह आया तो था मुगलो की ओर से अपने भाइयो का शिर काटने, लेकिन अचानक उसका चित्त बदल गया, उसे अपने ऊपर घृणा हुई और क्रोध भी। अपनी जननी-जन्मभूमि की दुर्दशा देखकर उसकी आँख डबडबा गई, वह सिसकियाँ भरने लगा। इधर तुमुल युद्ध हो रहा था, उधर वह फूट-फूटकर रो रहा था। रोते-रोते उसने देखा कि तू वैरियो के व्यूह से निकल रहा है और तेरी रक्षा के लिए झालामान्ना अपने शत्रुओ को तलवार के घाट उतारकर मृत्यु का आलिगन कर रहा है। उसने सोचा, यदि झाला की जगह मे होता, और रो पडा। देश को धोखा देकर जिस शान्ति के लिए लालायित हो रहा था उसमे उसे घोर अशान्ति मिली। जिस सुख के लिए वीर-प्रसविनी मेवाड भूमि को लात मारकर चला गया था उसमे उसे असह्य दु ख था। वह पागल की तरह उठा और चेतक के पीछे चल पडा। वह चाहता था तुझसे क्षमा माँगकर अपना प्रायश्चित्त करना, उसकी इच्छा थी तेरे पैरो पर मस्तक रख कर घड़ी भर रो लेने की और उसकी अभिलाषा थी तेरे

हृदया रानी ने कलम पकडकर कहा, "प्राणनाथ ! सन्धि-पत्र लिखने का अधिकार तुम्हे नही है, यह अधिकार तो उन्हें प्राप्त है जिन्होने हल्दीघाटी के रण मे प्राणोत्सर्ग किये है, यह अधिकार झालामान्ना और चेतक को है और है उस मेवाड-वाहिनी को जिसने अपना जीवन देकर मेवाड को जीवन दिया है। तुम्हारे रण के कारण कितनी माताओ की गोदियाँ सूनी पड गई, कितनी ललनाओ के सिन्दूर धुल गये और हाथ की चूडियाँ टूट गई और प्राणवल्लभ ! तुम सन्धि-पत्र लिखते हो ! कभी नही, तुम सन्धि-पत्र नही लिख सकते । यदि मेवाड की रक्षा का भार तुममे सहन नही होता तो आज मे मै स्वाधीनता के लिए लडूंगी, तुम अपनी तलवार मुझे दो, मै चण्डी बन जाऊं प्रियतम !'

रानी की बाते सुनकर तेरी मोह-निद्रा टूट गई। तूने रानी को लज्जा की आँखो मे देखा। इतने मे वैरियो ने तुझे घेर लिया और तू अपने भूखे परिवार के साथ भीलो की सहायता से कही छिप गया। क्या तू बता सकता है वह कठोर तप किसलिए था ?

हिन्दू-सूर्य ! शत्रुओ को चावण्ड का भी पता लग गया। अब तुझे मेवाड मे तिल भर भी जगह सुख से विश्राम करने की नही थी। तू मेवाड छोड देने का निश्चय कर अरावली की चोटी पर चढ गया और वही से शोक-वसना जननी का मौन-विलाप सुनकर रो पडा, किन्तु रोने को समय कहाँ था ? तूने झुककर नमस्कार किया। रानी ने अपने अँचरे का कोना पकड़कर वन्दना की, और बच्चो ने अपने छोटे-छोटे हाथों से प्रणाम किया। सबकी आँखो मे गहरी वेदना के आँसू थे। राजपरिवार दो आँगुर सुरक्षित भूमि के लिए रो रहा था। हाय, स्वतन्त्रता के लिए इतनी कठोर तपस्या ! इतनी कठोर यातना !

राष्ट्र निर्माता ! माँ के आँसुओं ने तुझे विदा दी, तू अपनी मातृ-भूमि छोड़कर चलने के लिए प्रस्तुत हो गया, तब तक तेरी दृष्टि भामाशाह पर पडी। उसको तूने भगवान् एकलिंग के आशीर्वाद के समान देखा। वह वृद्ध तपस्वी

लकड़ी के सहारे आकर तेरे चरणो मे लिपट गया और आगे अतुल सम्पत्ति रखकर बोला–"महाराणा, प्राणो पर अधिक ममता न रहने पर भी तुझे देश के लिए जीना पड़ेगा, तुझे मेवाड नही छोड़ सकता, तेरे रोम-रोम मे वह अपने सुखमय भविष्य की आशा रखता है। जब तक तू इसका उद्धार नही कर लेगा, ऋण से मुक्त नही होगा। प्रताप! तू मेरी इस सम्पत्ति से वेतन-भोगी सैनिक एकत्र करके ऐसा हडकम्प मचा दे कि सारा विश्व हिल उठे और मेवाड के कण-कण मे तेरे प्रताप की ज्वाला जल उठे जिसमे झुण्ड के झुण्ड शत्रु मेवाड छोडकर भेडो की तरह भाग निकलें! मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस वार तुम्हारी विजय-वैजयन्ती मेवाड के किले पर गर्व के साथ फहरेगी।" भामाशाह चुप हो गया लेकिन पहाड़ों की दरियो ने उसके कहे हुए शब्दो को दुहरा दिया। तेरे शरीर मे विजली दौड गई, जीवन मे शक्ति आगई, प्राणो में बल आगया, आँखो मे ज्योति आगई और धूमिल चेहरा आशा से चमक उठा। तूने कहा––"मन्त्रीप्रवर! यदि मुझे, मेवाड नही छोड सकता तो मे भी अब मेवाड़ को स्वतन्त्र वनाकर ही छोड़ूँगा। वृद्ध मन्त्री की आज्ञा शिर पर है, यह सम्पत्ति ही मेवाड के भाग्य की ऊषा है। वृद्ध तपस्वी! मेवाड स्वतन्त्र होकर रहेगा, जन्म भूमि स्वतन्त्र होकर रहेगी और प्रताप स्वतन्त्र होकर रहेगा, अब तेरे प्रताप को ससार की कोई भी शक्ति नही रोक सकती।" भामाशाह चला गया, उसके मुख पर एक प्रकाश था और हृदय मे उल्लास।

मेवाड-प्राण! स्वाधीनता के लिए सैनिक एकत्र होने लगे! वर्दियाँ बदल दी गई, तलवारों पर पानी चढ़ गया, भाले-बरछों के मुरचे छुडा दिये गये, नये पुराने समस्त हथियार युद्ध के लिए झनझना उठे। थोड़े ही दिनो मे सिपाहियों की एक ठोस सेना तैयार हो गई।

मेवाड-रक्षक! अपनी सशस्त्र टोली लेकर तूने बडी तीव्रता से देवीर पर आक्रमण किया। मेवाड़ के भाग्य का सूर्योदय हुआ और सारे मुगल मारे गये। किले पर मेवाड का झण्डा गड़ गया। तेरे शिर पर खून सवार था। तूने

कुम्भलगढ़ पर चढ़ाई की और बीन-बीनकर एक-एक शत्रु को मार डाला। गढ पर विजय-वैजयन्ती फहरा उठी। इस तरह तेरी सेना आँधी की तरह बढने लगी। तूने अपने शौर्यबल से थोड़े ही दिनों में एक-एक कर समस्त मेवाड़ पर अधिकार जमा लिया। दिशाओ में जय-निनाद गूँज उठा और निखिल सृष्टि तेरी कीर्ति-सुरभि से सुरभित हो उठी। मेवाड़ के एक एक कण मे आनन्द का महासागर लहर रहा था। बड़े समारोह के साथ देश के कोने कोने मे विजयोत्सव मनाया गया। पेड़ो पर खग-कुल ने तेरे यश का गान किया, आकाश ने रात मे मनौती के दीप बाले, सूर्य चन्द्र ने आरती उतारी, पहाडो के झरनो ने अपनी कल-कल ध्वनि मे तेरे गौरव की कहानी कही और सरिताये विजय-समाचार सुनाने के लिए सागर की ओर दौड पडी।

रण-श्रान्त! तू लडते-लडते थक गया था। अब तुझे विश्राम लेने की इच्छा हो रही थी। तू विश्व के वक्ष पर अपने व्यक्तित्व की एक छाप छोड़कर वण्डोली की पवित्र समाधि मे सो गया। वह गहरी नीद आज तक नही टूटी।

मेवाड़-उद्धारक! आज मै अपने तैतीस करोड सहयोगियों के साथ तुझे जगा रहा हूँ।

वीर! तू समाधि की चट्टानो को फेंक दे और गरजकर उठ जा। खल-दल चकित और चिंतित हो उठे। वैरी का मणिमय सिहासन भय से काँप उठे और पराधीन भारत को उसका खोया हुआ सेनापति मिल जाय। अस्तु।

महान्! इन्ही कतिपय घटनाओ को मैने कविता का रूप दिया है। यह खण्डकाव्य है अथवा महाकाव्य, इसमे सन्देह है, लेकिन तू तो निःसन्देह महाकाव्य है। तेरे जीवन की एक-एक घटना संसार के लिए आदर्श है और हिन्दुत्व के लिए गर्व की वस्तु।

श्लाघ्य देव! मेरी शैली भिन्न है और पथ अलग। जब तू स्वतन्त्र है तो तेरे कीर्ति-कीर्त्तन मे यदि मैं स्वतन्त्र पथ का अवलम्बन न करूं तो उसमे कलंक नही लग जायेगा?

इसी भाव से मंने अपना पथ अलग बनाया, अपनी कविता पर-मुखापेक्षी नहीं रक्खी, किसी के द्वार पर कल्पना की भीख नहीं माँगी और न किसी के राग में राग ही मिलाया।

मेरा पथ आरम्भ से अन्त तक शीशे की तरह निर्मल और मनोहर है, अन्य पथों की तरह बबूल और ताड़ के पेड़ आकर उसके सौन्दर्य को नष्ट नहीं करते हैं। उसमें कल्प-वृक्षों की सुखद छाया है, उसका यात्री आराम से अपने लक्ष्य तक पहुँच सकता है, उसकी मनोहरता पथिक को मोहे बिना नहीं रह सकती क्योंकि तू साथी की तरह उसके साथ हँसता-बोलता रहेगा।

क्षमाशील! मानव की सृष्टि ही त्रुटियों से हुई है तो भला कब उसकी रचना त्रुटियों से अलग रहेगी? यह काव्य निर्दोष है इसमें सन्देह है, अनेक त्रुटियाँ होंगी। तू उन्हें, बालक जानकर, क्षमा कर दे और वरदान दे कि लेखनी के रंग-बिरंगे फूलों से वीर-पूजा कर सकूँ। क्या तू मुझे वरदान देगा? समाधि के भीतर से ही एक बार बोल तो!

पुरुषोत्तम! तेरे चरणों ने जिन जिन स्थानों को स्पर्श किया था, वे सभी तीर्थ के समान ही पवित्र हैं। तू अपने सिंहासन के वर्तमान अधिपति श्री भूपालसिंह को और झालामान्ना के वंशावतंस झालावाड़-नरेश श्री राजेन्द्रसिंह जू देव को शत-शत आशीर्वाद दे, जिनकी कृपा से मैंने उन तीर्थों के दर्शनों का लाभ उठाया है।

गुरुदेव हरिऔध जी ने लेखनी में शक्ति देकर, आदरणीय श्रीनारायण जी चतुर्वेदी ने वरदान देकर, प्रिय मित्र ब्रजमोहन जी केजरीवाल ने सम्मान देकर, भाई रामबहोरी शुक्ल और नाथ-संघ (सर्वश्री ठाकुर शहजादसिंह, दूधनाथ पाण्डेय, पद्मनाथसिंह और सूर्यनाथसिंह) ने उत्साह देकर रचना-काल में मेरी उपयुक्त सहायता की है, इसलिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

देव! तू अब मुझे विदा दे। तेरे गुणों के महासागर से जो मैंने दो एक मोती चुन लिये हैं उन पर मुझे गर्व है।

शुभम्

विषय-सूची

	पृष्ठ
नमस्कार	क
प्रस्तावना	ग

परिचय

प्रताप	१
चित्तौड़	३
झाला मान्ना	६
वीर-सिपाही	८
चेतक	१०
हल्दीघाटी	१२
भाला	१४

हल्दीघाटी

प्रथम सर्ग	१७
द्वितीय सर्ग	३५
तृतीय सर्ग	४३
चतुर्थ सर्ग	४९
पंचम सर्ग	५५
षष्ठ सर्ग	६९
सप्तम सर्ग	७७
अष्टम सर्ग	८७
नवम सर्ग	९५
दशम सर्ग	१०३

एकादश सर्ग	..	...	... १११
द्वादश सर्ग	..	...	... १२५
त्रयोदश सर्ग	..	...	... १३९
चतुर्दश सर्ग	...	...	... १४९
पंचदश सर्ग	...	...	... १५५
षोडश सर्ग	...	...	... १६७
सप्तदश सर्ग	...	...	... १७९
परिशिष्ट	...	...	... १९१

नमस्कार

चौबीस पंक्ति

पावन-विलास मय नमस्कार,
हे ललित-लास-मय नमस्कार।
निधि-मय, विकास-मय नमस्कार,
हे हे विहास-मय नमस्कार॥

जिस अलख-ज्योति से रवि-मयक,
शोभित करते नभ-नील-अंक।
उस दिव्य-ज्योति को बार-बार,
करता नत-मस्तक नमस्कार॥

विधि-मय विभूति-मय नमस्कार,
परब्रह्म, अनामय नमस्कार।
अनुराग-राग-मय नमस्कार,
हे हे विराग-मय नमस्कार॥

जो अजर, अमर, अव्यक्त-रूप,
अविकार, अनघ, अक्षर, अनूप।
जो नभ समान है निराकार,
उस विविध वेश को नमस्कार॥

हे देव-देव, हे दक्ष देव,
हे गुप्त देव, प्रत्यक्ष देव।
आद्यन्त-मध्य, मतिमय उदार,
हे जगन्नियन्ता नमस्कार॥

अज्ञात-रूप, अज्ञात-नाम,
अविराम-धाम, अज्ञात-काम ।
क्षण अस्ति-नास्ति भ्रममय अपार,
घनश्याम-राम मय नमस्कार ।।

प्रस्तावना

बारह पंक्ति

आग बरसती हो पर जिसको,
आगे बढ़ने की लय थी।
शस्त्र-हीन घिर जाने पर भी,
जिसकी जय आशा-मय थी॥

रोम-रोम जिसका वैरी था,
जो सहता था दुख पर दुख।
काँटों के सिंहासन पर भी,
शत सविता-सा जिसका मुख॥

भाई ने भी छोड़ दिया—
पर रखा देश का पानी है।
पाठक! पढ़ लो उसी वीर की,
हमने लिखी कहानी है॥

परिचय

महाराणा प्रतापसिंह

प्रताप

अड़तालीस पंक्ति

यज्ञ-अनल-सा धधक रहा था,
वह स्वतन्त्र अधिकारी ।
रोम-रोम मे निकल रही थी,
चमक - चमक चिनगारी ।।

अपना सब कुछ लुटा दिया,
जननी–पद–नेह लगाकर ।
कलित-कीर्ति फैला दी है,
निद्रित मेवाड़ जगाकर ।।

भरा हुआ था उर प्रताप का,
गौरव की चाहों से।
फूंक दिया अपना शरीर,
हम दुखियों की आहों से ।।

जग - वैभव - उत्सर्ग किया,
भारत का वीर कहाकर ।
माता-मुख-लाली प्रताप ने,
रख ली लहू बहाकर ।।

भीषण-प्रण तक किया रक्त से,
समर-सिन्धु भर डाला ।
ले नंगी तलवार बढ़ा,
सब कुछ स्वाहा कर डाला ।।

अरावली-उन्नत-शिखरों पर,
सजता रहा रणों को।
अपने शोणित से धोया था,
माँ के मृदु-चरणों को॥

बढ़ता रहा प्रताप लगाकर,
बाजी निज प्राणों की।
जहाँ हो रही थी वर्षा,
चोखे चुभते बाणों की॥

रण-चण्डी को पिला दिया,
शोणित-मदिरा का प्याला।
बड़वानल-सी धधका दी थी,
क्रोधानल की ज्वाला॥

उसके एक इशारे पर,
वीरो ने ले तलवारें,
पर्वत-पथ रँग दिये रक्त से,
कर वारों पर वारें।

गूँज रही जावर-माला मे,
उसकी अमर कहानी।
अब तक हल्दीघाटी के पथ पर,
है समर-निशानी॥

रक्षा की तलवार उठाकर,
समर किया लाखों से।
पोंछ दिया आँसू प्रताप ने,
माता की आँखो से॥

निकल रही जिसकी समाधि से,
स्वतन्त्रता की आगी।
यहीं कही पर छिपा हुआ है,
वह स्वतन्त्र वैरागी॥

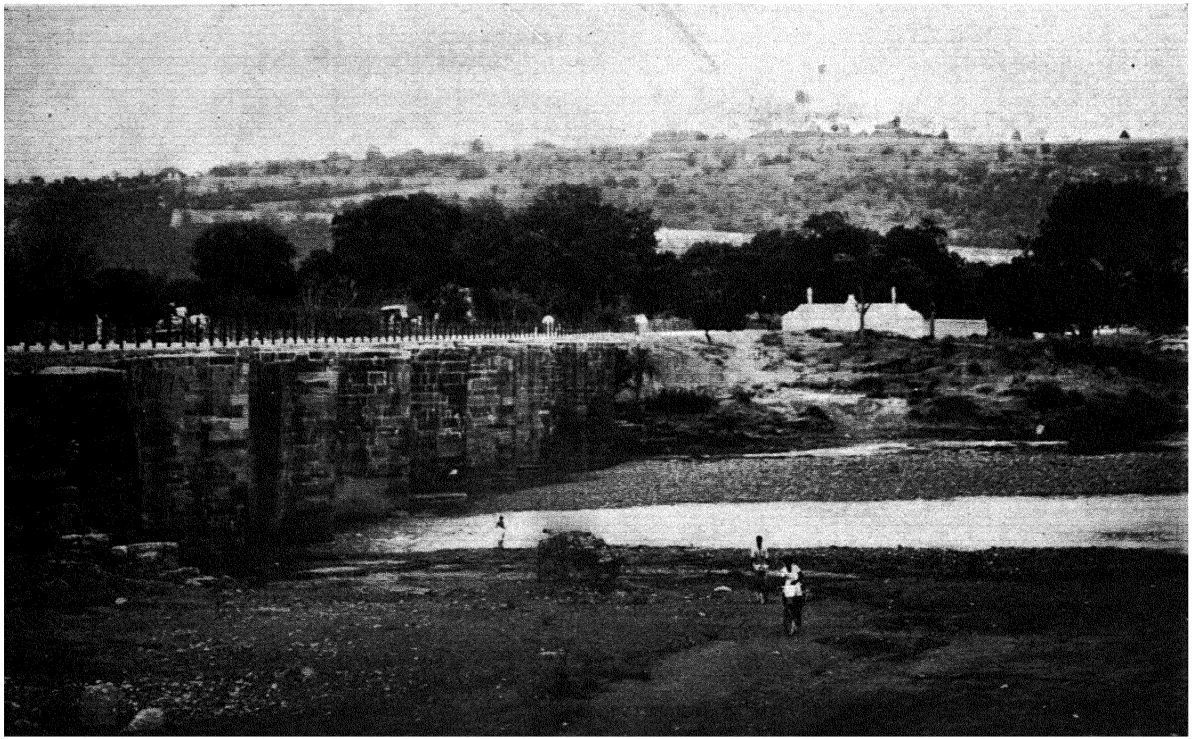

चित्तौड़गढ़

चित्तौड़

छप्पन पंक्ति

नही देखते सतियो के जलने--
का है अंगार कहाँ ?
राजपूत ! तेरे हाथो मे,
है नगी तलवार कहाँ ?

कहाँ पद्मिनी का पराग है,
शिर से उसे लगा ले हम।
रत्नसिह का कहाँ क्रोध है,
गात-रक्त गरमा ले हम।।

जौहर-व्रत करने वाली--
करुणा की करुण पुकार कहाँ ?
और न कुछ कर सकते तो,
देखे उसकी तलवार कहाँ।।

मन्द पड़े जिससे वैरी--
वह भीषण हाहाकार कहाँ !
स्वतन्त्रता के सन्यासी,
राणा का रण-उद्गार कहाँ।।

किस न वीर की दमक उठी थी,
दीप्ति दीपिका-माला-सी।
कौन वीर-बाला न चिता पर,
चमक उठी थी ज्वाला-सी।।

जमा सके अधिकार तनिक,
खिलजी-कर के हथियार नही।
ठहर सकी क्षणभर इस पर,
अकबर की भी तलवार नही।।

गोरा-बादल के खँडहर से,
निकल रही है आग अभी।
स्वतन्त्रता के मन्दिर का,
जलता अविराम चिराग अभी।।

दुश्मन की तलवार फिरी,
वीरों की बोटी बोटी पर।
अभी वीरता खेल रही है,
इसकी उन्नत चोटी पर।।

यही देश राणा प्रताप की,
स्वतन्त्रता का अवलम्बन।
इसी भूमि-कण का दर्शन है,
शत-शत मन्दिर का दर्शन।।

इसी भूमि की पूजा की,
वीरों ने रण की चाहों से।
माँ-बहनों ने जौहर से,
दीनों ने अपनी आहों से।।

इंच-इंच भर धरती तर थी,
बहादुरो के खूनों से।
किया गया था नित्य इसी का,
अर्चन प्राण-प्रसूनों से।।

जन-रक्षा के लिए यही,
वीरों की सेना सजती थी।
वैरी को दहलाने वाली,
रण-भेरी नित बजती थी।।

ऐ मेरे चित्तौड़ देश, बिखरे--
प्रश्नों को कर दे हल;
साहस भर दे हृदय-हृदय मे,
बाहु-बाहु में भर दे बल।।

वीर-रक्त से तू पवित्र है,
तू मेरे बल का साधन।
बोल-बोल तू एक बार फिर,
कब देगा राणा-सा धन।।

भाला मास्टर

चालीस पंक्ति

निज शरीर की आहुति दूँगा,
किसी बात की चाह नहीं।
मैं प्रताप के लिए मरूँगा,
हटो ! हटो !! परवाह नहीं ।।

देख खून पर खून बन्धु का,
मरना अब इन्कार नहीं।
पराधीनता की बेडी में,
रहना है स्वीकार नहीं ।।

राजपूत हूँ राजपूत छाती—
उत्तान करूँगा अब।
मातृ-भूमि-बलिवेदी पर,
अपना बलिदान करूँगा अब ।।

यही समय है मर मिटने का,
फिर मेरा उद्धार कहाँ ?
कहाँ, कहाँ भीषण भाला है,
बरछी-तीर-कटार कहाँ ।।

खौल रहा है खून रगों में,
लड़ने का हथियार कहाँ ?
बिजली-सी गिरने वाली,
वह नागिन-सी तलवार कहाँ ।।

कहाँ, कहाँ, मेरा घोड़ा है,
आगे पैर बढ़ाऊँगा।
माँ के चरणों पर प्रताप के,
पहले शीश चढ़ाऊँगा।।

मैं जलता अंगार एक,
अरि-वन में आग लगा दूँगा।
प्यासी है अपने शोणित से,
माँ की प्यास बुझा दूँगा।।

अड जाऊँगा जय प्रताप की,
जय करता अड जाऊँगा।
अब स्वदेश के लिए उठा हूँ,
वैरी से लड़ जाऊँगा।।

झाला मान्ना मुगलदीप का,
मतवाला परवाना है।
दीपक उसे बुझा देना है,
या जलकर मर जाना है।।

टोके तो मुझ रण-यात्री को,
कौन टोकने वाला है।
भभक उठा झाला मान्ना अब,
कौन रोकने वाला है।।

वीर सिपाही

अड़तालीस पंक्ति

भारत-जननी का मान किया,
बलिवेदी पर बलिदान किया।
अपना पूरा अरमान किया,
अपने को भी कुर्बान किया।।

रक्खी गर्दन तलवारो पर,
थे कूद पड़े अंगारों पर।
उर ताने शर-बौछारों पर,
धाये बरछी की धारों पर।।

झनझन करते हथियारो मे,
अरि-नागों के फुफकारो मे।
जगी-गज-प्रबल कतारो मे,
घुस गये स्वर्ग के द्वारों में।।

वह जहर भरा था तीरों मे,
मेवाड़-देश के धीरों मे।
जिससे दुश्मन के वीरो मे,
बँध सके न वे जंजीरों मे।।

उनमे कुछ ऐसी आन रही,
कुछ पुश्तैनी यह बान रही।
मेवाड़-देश के लिए सदा,
वीरों की सस्ती जान रही।।

कहते थे भाला आने दो,
चिल्ले पर तीर चढाने दो।
आगे को पैर बढाने दो,
रण मे घोडा दौड़ाने दो।।

देखो फिर कुन्तल वालों की,
कुछ करामात करवालों की।
इस वीर-प्रसविनी अवनी के,
छोटे से छोटे बालो की।।

बसने तक को है ग्राम नहीं,
जंगल में रहते धाम नहीं।
पर भीषण यही प्रतिज्ञा है,
अरि कर सकते आराम नही।।

हम माता के गुण गायेगे,
बलि जन्म-भूमि पर जायेगे।
अपना झण्डा फहरायेगे,
हम हाहाकार मचायेगे।।

वैरी-सम्मुख अड़ जायेंगे,
रण में न तनिक घबड़ायेंगे।
लड़ जायेंगे, लड़ जायेंगे,
दुश्मन को ले उड जायेंगे।।

यह कहते थे, चढ़ जाते थे,
रण करने को घबड़ाते थे।
मारू बाजे कढ़ जाते थे,
हथियार लिये बढ़ जाते थे।।

मुगलों का नाम मिटायेंगे,
अपना साहस दिखलायेंगे।
लड़ते लड़ते मर जायेंगे,
मेवाड़ न जब तक पायेंगे।।

चेतक

चालीस पंक्ति

चेत करो अब चेत करो,
चेतक की टाप सुनाई दी।
भागो, भागो, भाग चलो,
भाले की नोक दिखाई दी।।

चेतक क्या बड़वानल है वह–
उर की आग जला दी है।
विजय उसी के साथ रहेगी,
ऐसी बात चला दी है।।

दौड़ाता अपना घोड़ा अरि,
जो आगे बढ़ जाता था।
उछल मौत से पहले उसके,
शिर पर वह चढ़ जाता था।।

लड़ते लड़ते रख देता था,
टाप कूद कर गैरों पर।
हो जाता था खड़ा कभी,
अपने चंचल दो पैरों पर।।

आगे आगे बढ़ता था वह,
भूल न पीछे मुड़ता था।
बाज नहीं, खगराज नही,
पर आसमान में उड़ता था।।

पता नही था संगर मे फिर,
पलक झाँजने धमक गया।
वार किया, संहार किया, छिप—
गया अचानक चमक गया।।

लड़ता था वह बाजि लगाकर,
बाजी अपने प्राणों की।
करता था परवाह नही वह,
भाला - बरछी - बाणों की।।

फाड़-फाड़ कर कुम्भस्थल,
मदमस्त गजों को मर्दन कर।
दौड़ा, सिमटा, जमा, उड़ा,
पहुँचा दुश्मन की गर्दन पर।।

चे तक अरि ने बोल दिया,
चेतक के भीषण वारों मे।
कभी न डरता था दुश्मन की,
लहू भरी तलवारों मे।।

उड़ा हवा के घोड़े पर,
हो तो चेतक-सा घोड़ा हो।
ले ले विजय, मौत मे लड़ ले,
जिसका ऐसा घोड़ा हो।।

हल्दीघाटी

अड़तालीस पंक्ति

राणा का जयकार भरा,
इसमें स्वदेश का प्यार भरा।
शान्त-जलधि में ज्वार भरा,
नीरव में हाहाकार भरा।।

साहस - बल - उद्‌गार भरा,
रण-चण्डी का हुङ्कार भरा।
इसी भूमि-रज-कण-कण में,
अरि नागों का फुङ्कार भरा।।

यही यही हल्दीघाटी है,
उछल कलेजा काट लिया।
अपनी लोहित जीभ बढ़ाकर,
रक्त हमारा चाट लिया।।

इसी समर के भय से कितने,
देवालय मसजीद हुए।
युद्धस्थल है वही जहाँ नर,
मर-मर अमर शहीद हुए।।

अब तक जिससे शिर ऊँचा है,
ऐसा ही कुछ काम किया।
बिगुल बजाकर यहीं भयंकर,
राणा ने संग्राम किया।।

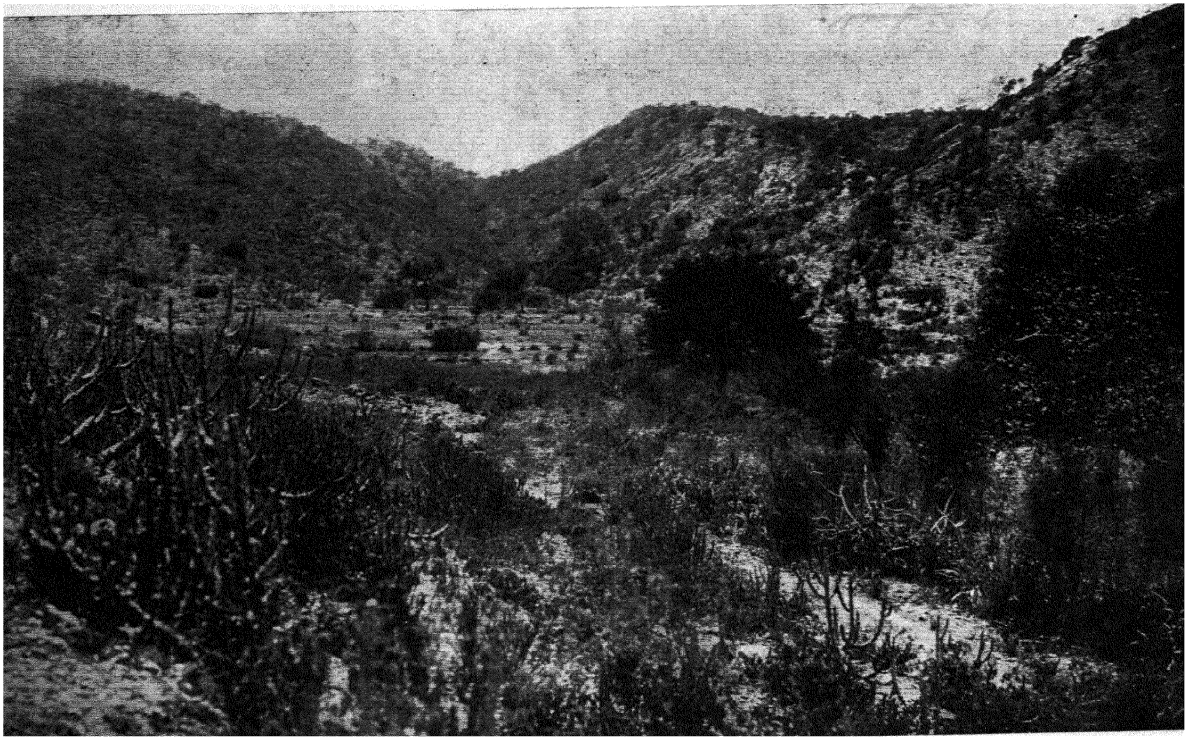

हल्दीघाटी

जन-रक्षा के लिए यहीं,
कण-कण मे रक्त बहाया था।
इसी भूमि पर. राणा ने,
अपना सर्वस्व लुटाया था।।

चवहत्तर मन तौल दिया था,
राणा ने उपवीत यहीं।
दुश्मन से कह दिया तुम्हारी,
हार हुई है, जीत नही।।

कूद पड़े सब वीर सिपाही,
इसी धधकती ज्वाला मे।
यही देश पर मर मिटने का,
देखा साहस भाला मे।।

मौन-मौन गिरि कहते हिलमिल,
गाथा वीर जवानों की।
एक एक पत्थर कहता है,
करुण-कथा बलिदानों की।।

तरु के पत्तो पर अंकित—
राणा की अमर कहानी है।
अब तक पथ से मिटी नही,
चेतक की चरण-निशानी है।।

"स्वतन्त्रता के लिए मरो,"
राणा ने पाठ पढ़ाया था।
इसी वेदिका पर वीरो ने,
अपना शीश चढ़ाया था।।

तुम भी तो उनके वंशज हो,
काम करो, कुछ नाम करो।
स्वतन्त्रता की बलि-वेदी है,
झुककर इसे प्रणाम करो।।

भाला

अड़तालीस पंक्ति

मैं महाकाल, मैं महाकाल,
मैं पी लूँगा अरि-रक्त-थाल।
ले वीर-रुद्र से मुण्ड-माल,
मैं कर दूँगा ताण्डव कराल॥

मैं महाकाल, मैं महाकाल,
मैं बड़वानल का हूँ उबाल।
मैं डस लूँगा हूँ वक्र-व्याल,
दिखला दूँगा मैं प्रलय-काल॥

यह कहता था मँडराता था,
झट सीने मे घुस जाता था।
विषमय अजगर कहलाता था,
वह इधर-उधर लहराता था॥

राणा को सदा बचाता था,
वह करके खून पचाता था।
अरि को रण-बीच नचाता था,
वह हाहाकार मचाता था॥

लोहा-तन था इससे हरदम,
लोहा लेने को तुला रहा।
लोहू पीने के लिए सदा,
उसका लोहित-मुख खुला रहा॥

रख दिया गया नजदीक तुरत,
वह जहरीला पी गया जहर।
फिर झूम झूम वैरी-उर से,
वह लगा खेलने लहर-लहर।।

उसका सग्राम निराला था,
वह आला था, मतवाला था।
राणा का रक्षक झाला था,
या उनका खूनी भाला था।।

कहता था आओ आओ तुम,
मुझ भाले से भिड़ जाओ तुम।
अपनी तलवार बढाओ तुम,
भगना है तो भग जाओ तुम।।

ठहरो, ठहरो आता हूँ मै,
रण-कौशल दिखलाता हूँ मै।
बन प्रलयंकर जाता हूँ मै,
शोणित से भर जाता हूँ मै।।

रण-विजय लिये जाता हूँ मै,
सन्देश दिये जाता हूँ मै।
लोहू से तर जाता हूँ मै,
ले मौत जिधर जाता हूँ मै।।

राणा की समर-कला पाकर,
खिलता हूँ मुगल-गला पाकर।
कहता हूँ रण मे धा-धाकर,
वैरी के उर मे जा जाकर।।

कुछ कर सकता अरि-तन्त्र नही,
लग सकता अकबर-मन्त्र नही।
परतन्त्र नही, परतन्त्र नही,
मैं रह सकता परतन्त्र नहीं।।

प्रथम सर्ग

चार सौ चौबीस पंक्ति

वण्डोली है यही. यही पर--
है समाधि सेनापति की।
महातीर्थ की यही वेदिका,
यही अमर-रेखा स्मृति की।।

एक बार आलोकित कर हा,
यही हुआ था सूर्य अस्त।
चला यही से तिमिर हो गया–
अन्धकार-मय जग समस्त ।।

आज यही इस सिद्ध पीठ पर
फूल चढाने आया हूँ।
आज यही पावन समाधि पर,
दीप जलाने आया हूँ।।

आज इसी छतरी के भीतर,
सुख-दुख गाने आया हूँ।
सेनानी को चिरसमाधि से,
आज जगाने आया हूँ ।।

सुनता हूँ वह जगा हुआ था,
जौहर के बलिदानों से।
सुनता हूँ वह जगा हुआ था,
बहनों के अपमानो से।।

सुनता हूँ ली थी अँगडाई,
अरि के अत्याचारो मे।
सुनता हूँ वह गरज उठा था,
कड़ियों की झनकारो मे।।

सजी हुई है मेरी सेना,
पर सेनापति सोता है।
उसे जगाऊँगा, विलम्ब अब--
महासमर मे होता है।।

आज उसी के चरितामृत मे,
व्यथा कहूँगा दीनो की।
आज यही पर रुदन-गीत मे,
गाऊँगा बल-हीनो की।।

आज उसी की अमर-वीरता,
व्यक्त करूँगा गानो मे।
आज उसी के रण-कौशल की--
कथा कहूँगा कानों में।।

पाठक ! तुम भी सुनो कहानी,
आँखों मे पानी भरकर।
होती है आरम्भ कथा अब,
बोलो मगलकर शकर।।

विहस रही थी प्रकृति हटाकर,
मुख मे अपना घूँघट-पट।
बालक-रवि को ले गोदी म,
धीरे से बदली करवट।।

परियो-सी उतरी रवि-किरणे,
घुली मिली रज-कन-कन मे।
खिलने लगे कमल दिनकर के,
स्वर्णिम-कर के चुम्बन मे।।

मलयानिल के मृदु-झोकों मे,
उठी लहरियाँ सर-सर मे।
रवि की मृदुल सुनहली किरणें,
लगी खेलने निर्झर मे।।

फूलों की साँसों को लेकर,
लहर उठा मारुत वन-वन।
कुसुम-पँखुरियो के आँगन मे,
थिरक-थिरक अलि के नर्तन।।

देखी रवि ने रूप-राशि निज,
ओसों के लघु-दर्पण मे।
रजत-रश्मियाँ फैल गईं--
गिरि-अरावली के कण-कण मे।।

इसी समय मेवाड़-देश की,
कटारियाँ खनखना उठी।
नागिन-सी डस देने वाली,
तलवारे झनझना उठी।।

धारण कर केसरिया बाना,
हाथों मे ले ले भाले।
वीर महाराणा से ले खिल--
उठे बाल भोले भाले।।

विजयादशमी का वासर था,
उत्सव के बाजे बाजे।
चले वीर आखेट खेलने,
उछल पड़े ताजे-ताजे।।

राणा भी आखेट खेलने,
शक्तसिंह के साथ चला।
पीछे चारण, वश - पुरोहित,
भाला उसके हाथ चला।।

भुजा फडकने लगी वीर की,
अशकुन दिखलाने वाली।
गिरी तुरत तलवार हाथ से,
पावक बरसाने वाली।।

बतलाता था यही अमंगल,
बन्धु बन्धु का रण होगा।
यही भयावह रण ब्राह्मण की–
हत्या का कारण होगा।।

अशकुन की परवाह न की,
वह आज न रुकनेवाला था।
अहो, हमारी स्वतन्त्रता का,
झण्डा झुकने वाला था।।

घोर विपिन मे पहुँच गये,
कातरता के बन्धन तोडे।
हिसक जीवों के पीछे–
अपने अपने घोड़े छोडे।।

भीषण वार हुए जीवो पर,
तरह तरह के शोर हुए।
मारो ललकारो के रव,
जंगल मे चारो ओर हुए।।

चीता यह, वह बाघ, शेर वह,
शोर हुआ आखेट करो।
छेको, छेको हृदय-रक्त ले,
निज बरछे को भेंट करो।।

लगा निशाना ठीक हृदय मे,
रक्त-पगा जाता है वह।
चीते को जीते जी पकड़ो,
रीछ भगा जाता है वह।।

उड़े पखेरू, भाग गये मृग,
भय से शशक सियार भगे।
क्षण भर थमकर भगे मत्त गज,
हरिण हार के हार भगे॥

नरम-हृदय कोमल मृग-छौने,
डौक रहे थे इधर-उधर।
एक प्रलय का रूप खड़ा था,
मेवाड़ी - दल गया जिधर॥

किसी कन्दरा से निकला हय,
झाडी में फँस गया कहीं।
दौड रहा था, दौड़ रहा था,
दल-दल में धँस गया कहीं॥

लचकीली तलवार कहीं पर,
उलझ-उलझ मुड जाती थी।
टाप गिरी, गिरि-कठिन-शिला पर,
चिनगारी उड जाती थी॥

हय के हिन-हिन हुङ्कारों से,
भीषण - धनु - टकारों से।
कोलाहल मच गया भयकर,
मेवाड़ी - ललकारों से॥

एक केसरी सोता था वन के—
गिरि - गह्वर के अन्दर।
रोओं की दुर्गन्धि हवा से,
फैल रही थी इधर उधर॥

शिर के केसर हिल उठते,
जब हवा झुरुकती थी झुर-झुर;
फैली थी टाँगें अवनी पर,
नाकें बजती थीं घुरघुर॥

निःश्वासो के साथ लार थी,
गलफर से चूती तर-तर।
खून सने तीखे दाँतो मे,
मौत काँपती थी थर-थर।।

अन्धकार की चादर ओढ़े,
निर्भय सोता था नाहर।
मेवाड़ी - जन - मृगया से,
कोलाहल होता था बाहर।।

कलकल मे जग गया केसरी,
अलसाई आँखे खोली।
झुझलाया कुछ गुरनाया,
जब सुनी शिकारी की बोली।।

पर गुरनाता पुन सो गया,
नाहर वह आजादी से।
तनिक न की परवाह किसी की,
रचक डरा न वादी से।।

पर कोलाहल पर कोलाहल,
किलकारों पर किलकारे।
उसके कानों मे पडती थी,
ललकारो पर ललकारे।।

सो न सका उठ गया क्रोध मे,
अँगड़ाकर तन झाड़ दिया।
हिलस उठा गिरि-गह्वर जब,
नीचे मुख कर चिग्घाड़ दिया।।

शिला-शिला फट उठी, हिले तरु,
टूट टूट चट्टान गिरे।
सिह-नाद सुनकर भय मे जन,
चित्त - पट्ट - उत्तान गिरे।।

धीरे-धीरे चला केसरी
आँखो मे अंगार लिये।
लगे घेरने राजपूत,
भाला-बरछी-तलवार लिये॥

वीर-केसरी रुका नही,
उन क्षत्रिय-राजकुमारो से।
डरा न उनकी बिजली-सी
गिरने वाली तलवारो से॥

छका दिया कितने जन को
कितनों को लडना सिखा दिया।
हमने भी अपनी माता का—
दूध पिया है दिखा दिया॥

चेत करो, तुम राजपूत हो,
राजपूत अब ठीक बनो।
मौन-मौन कह दिया सभी से,
हम-सा तुम निर्भीक बनो॥

हम भी सिह, सिह तुम भी हो,
पाला भी है आन पड़ा।
आओ हम तुम आज देख ले,
हम दोनों में कौन बडा॥

घोडों की घुड़दौड़ रुकी—
लोगों ने बन्द शिकार किया।
शक्तसिह ने हिम्मत कर बरछे—
से उस पर वार किया॥

आह न की बिगड़ी न बात,
चण्डी के भीषण वाहन की।
कठिन तड़ित-सा तड़प उठा—
कुछ भाले की परवाह न की॥

काल-सदृश राणा प्रताप झट,
तीखा शूल निराला ले।
बढा सिंह की ओर झपटकर,
अपना भीषण-भाला ले॥

ठहरो-ठहरो कहा सिंह को,
लक्ष्य बनाकर ललकारा।
शक्तसिंह, तुम हटो सिंह को,
मैंने अब मारा, मारा॥

राजपूत अपमान न सहते,
परम्परा की बान यही।
हटो कहा राणा ने पर–
उसकी छाती उत्तान रही॥

आगे बढकर कहा लक्ष्य को,
मार नही सकते हो तुम।
बोल उठा राणा प्रताप ललकार–
नहीं सकते हो तुम॥

शक्तसिंह ने कहा बने हो,
शूल चलाने वाले तुम।
पडे नही हो शक्तसिंह सम,
किसी वीर के पाले तुम॥

क्यो कहते हो, हटो. हटो,
हूँ वीर नही रणधीर नही?
क्या सीखा है कही चलाना,
भाला - बरछी - तीर नही?

बोला राणा क्या बकते हो,
मै ने तो कुछ कहा नही।
शक्तसिंह, बखरे का यह
आखेट, तुम्हारा रहा नही॥

राजपूत-कुल के कलक,
धिक्कार तुम्हारी वाणी पर।
बिना हेतु के झगड पडे जो,
वज्र गिरे उस प्राणी पर॥

राणा का सत्कार यही क्या,
बन्धु-हृदय का प्यार यही?
क्या भाई के साथ तुम्हारा,
है उत्तम व्यवहार यही?

अब तक का अपराध क्षमा,
आगे को ढाल निकाला यह।
तेरा काम-तमाम करेगा,
मेरा भीषण-भाला यह॥

बात काटकर राणा की वह,
शक्तसिंह फिर बोल उठा।
डोल उठा मेवाड देश—
इस बार हलाहल घोल उठा॥

धार देखने को जिसने—
तलवार चला दी उंगली पर।
उस अवसर पर शक्तसिंह वह,
खेल गया अपने जी पर॥

बार-बार कहते हो तुम क्या,
अहंकार है भाले का!
ध्यान नहीं है क्या कुछ भी,
मुझ भीषण-रण-मतवाले का?

राजपूत हूँ मुझे चाहिए,
ऐसी कभी सलाह नहीं।
तुष्ट रहो या रुष्ट रहो,
मुझको इसकी परवाह नहीं॥

रुक सकता है ऐ प्रताप,
मेरे उर का उद्‌गार नही।
बिना युद्ध के अब कदापि,
है किसी तरह उद्धार नही॥

मुख-सम्मुख ठहरा हूँ मैं,
रण-सागर मे लहरा हूँ मैं।
हो न युद्ध इस नम्र विनय पर,
आज बना बहरा हूँ मैं॥

विष बखेर कर वैर किया,
राणा से ही क्या, लाखों से।
लगी बरसने चिनगारी,
राणा की लोहित आँखो से॥

क्रोध बढा, आवेश बढा,
अब वार न रुकने वाला है।
कहीं नही पर यही हमारा,
मस्तक झुकने वाला है॥

तनकर राणा शक्तसिह से,
बोला—ठहरो ठहरो तुम।
ऐ मेरे भीषण भाला,
भाई पर लहरो लहरो तुम॥

पीने का है यही समय इच्छा—
भर शोणित पी लो तुम।
बढ़ो बढो अब वक्षस्थल मे,
घुसकर विजय अभी लो तुम॥

शक्तसिह, आखेट तुम्हारा,
करने को तैयार हुआ।
लो कर मे करवाल बचो अब,
मेरा तुम पर वार हुआ॥

खडे रहो भाला ने तन को,
लून किया अब लून किया।
ग्वेद, महाराणा प्रताप ने,
आज तुम्हारा खून किया।।

देख भभकती आग क्रोध की,
शक्तसिह भी क्रुद्ध हुआ।
हा, कलक की वेदी पर फिर,
उन दोनों का युद्ध हुआ।।

कूद पड़े वे अहकार से,
भीषण-रण की ज्वाला मे।
रण-चण्डी भी उठी रक्त–
पीने को भरकर प्याला मे।।

होने लगे वार हर के-से,
एकलिङ्ग प्रतिकूल हुए।
मौत बुलानेवाले उनके,
तीक्ष्ण अग्रसर शूल हुए।।

क्षण-क्षण लगे पैतरा देने,
बिगड़ गया रुख भालों का।
रक्षा कौन करेगा अब इन–
दोनो रण-मतवालों का।।

दोनों का यह हाल देख,
वन-देवी थी उर फाड़ रही।
भाई-भाई के विरोध से,
काँप उठी मेवाड़-मही।।

लोग दूर से देख रहे थे,
भय से उनके वारों को।
किन्तु रोकने की न पड़ी,
हिम्मत उन राजकुमारों को।।

दोनों की आँखों पर परदे,
पड़े मोह के काले थे।
राजवंश के अभी-अभी,
दो दीपक बुझने वाले थे।।

तब तक नारायण ने देखा,
लड़ते भाई भाई को।
रुको, रुको कहता दौड़ा कुछ,
सोचो मान-बड़ाई को।।

कहा, डपट कर रुक जाओ,
यह शिशोदिया-कुल-धर्म नही।
भाई से भाई का रण यह,
कर्मवीर का कर्म नही।।

राजपूत - कुल के कलंक,
अब लज्जा से तुम झुक जाओ।
शक्तसिंह, तुम रुको रुको,
राणा प्रताप, तुम रुक जाओ।।

चतुर पुरोहित की बातो की,
दोनों ने परवाह न की।
अहो, पुरोहित ने भी निज–
प्राणों की रंचक चाह न की।।

उठा लिया विकराल छुरा,
सीने मे मारा ब्राह्मण ने।
उन दोनों के बीच बहा दी,
शोणित-धारा ब्राह्मण ने।।

वन का तन रँग दिया रुधिर से,
दिखा दिया, है त्याग यही।
निज स्वामी के प्राणों की–
रक्षा का है अनुराग यही।।

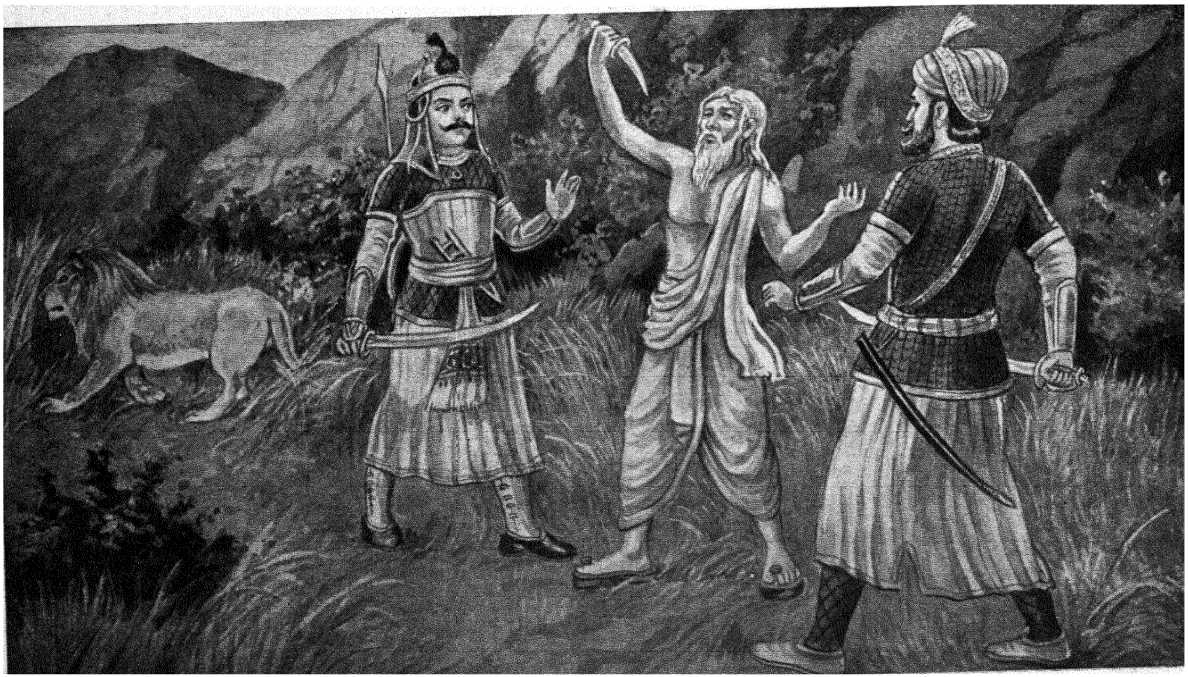

पुरोहित का प्राणोत्सर्ग

ब्राह्मण था, वह ब्राह्मण था,
हित राजवंश का सदा किया।
निज स्वामी का नमक हृदय का—
रक्त बहाकर अदा किया।।

जीवन-चपला चमक दमक कर,
अन्तरिक्ष में लीन हुई।
अहो, पुरोहित की अनन्त में—
जाकर ज्योति विलीन हुई।।

सुनकर ब्राह्मण की हत्या,
उत्साह सभी ने मन्द किया।
हाहाकार मचा सबने आखेट—
खेलना बन्द किया।।

खून हो गया खून हो गया—
का जंगल में शोर हुआ।
धन्य धन्य है धन्य पुरोहित,
यह रव चारो ओर हुआ।।

युगल बन्धु के दृग अपने को,
लज्जा-पट से ढाँप उठे।
रक्त देखकर ब्राह्मण का,
सहसा वे दोनों काँप उठे।।

धर्म-भीरु राणा का तन तो,
भय से कम्पित और हुआ।
लगा सोचने अहो कलकित,
बीर-देश चित्तौर हुआ।।

बोल उठा राणा प्रताप—
मेवाड़-देश को छोड़ो तुम।
शक्तसिंह, तुम हटो हटो,
मुझसे अब नाता तोड़ो तुम।।

शिशोदिया-कुल के कलक,
हा, जन्म तुम्हारा व्यर्थ हुआ।
हाय, तुम्हारे ही कारण यह–
पातक, महा अनर्थ, हुआ।।

सुनते ही यह मौन हो गया,
घूँट घूँट विष-पान किया।
आज्ञा मानी, यही सोचता,
दिल्ली को प्रस्थान किया।।

हाय, निकाला गया आज दिन,
मेरा बुरा जमाना है।
भूख लगी है प्यास लगी,
पानी का नही ठिकाना है।।

मे सपूत हूँ राजपूत,
मुझको ही जरा यकीन नही।
एक जगह सुख से बैठूँ, दो–
आँगुर मुझे जमीन नही।।

अकबर से मिल जाने पर हा,
रजपूती की शान कहाँ!
जन्मभूमि पर रह जायेगा,
हा, अब नाम-निशान कहाँ।।

यह भी मन मे सोच रहा था,
इसका बदला लूँगा मै।
क्रोध-हुताशन मे आहुति,
मेवाड़-देश की दूँगा मै।।

शिशोदिया में जन्म लिया यद्यपि,
यह है कर्त्तव्य नहीं।
पर प्रताप-अपराध कभी,
क्षन्तव्य नहीं, क्षन्तव्य नहीं।।

शक्तसिंह पहुँचा अकबर भी,
धाकर मिला कलेजे से।
लगा छेदने राणा का उर,
कूटनीति के नेजे से॥

युगल-बन्धु-रण देख क्रोध से,
लाल हो गया था सूरज।
मानो उसे मनाने को अम्बर पर—
चढता था भू-रज॥

किया सुनहला काम प्रकृति ने,
मकड़ी के मृदु तारों पर।
छलक रही थी अन्तिम किरणें,
राजपूत - तलवारों पर॥

धीरे धीरे रग जमा तम का—
सूरज की लाली पर।
कौवो की बैठी पचायत,
तरु की डाली डाली पर॥

चूम लिया शशि ने झुककर,
कोई के कोमल गालो को।
देने लगा रजत हँस हँसकर,
सागर-सरिता-नालों को॥

हिंस्र जन्तु निकले गह्वर से,
घेर लिया गिरि-झीलों को।
इधर मलिन महलो मे आया,
लाश सौंपकर भीलों को॥

वंश पुरोहित का प्रताप ने,
दाह-कर्म करवा डाला।
देकर धन ब्राह्मण-कुल के,
खाली घर को भरवा डाला॥

जहाँ लाश थी ब्राह्मण की,
जिस जगह त्याग दिखलाया था।
चबूतरा बन गया जहाँ–
प्राणों का पुष्प चढाया था॥

गया बन्धु, पर गया न गौरव,
अपनी कुल-परिपाटी का।
यह विरोध भी कारण है,
भीषण-रण हल्दीघाटी का॥

मेवाड, तुम्हारी आगे,
अब हा, कैसी गति होगी।
हा, अब तेरी उन्नति मे,
क्या पग-पग पर यति होगी॥

द्वितीय सर्ग

एक सौ बारह पंक्ति

हिलमिल कर उन्मत्त प्रेम के,
लेन देन का मृदु-व्यापार।
ज्ञात न किसको था अकबर की,
छिपी नीति का अत्याचार॥

अहो, हमारी माँ-बहनों मे,
सजती थी मीनाबाजार।
फैल गया था अकबर का वह,
कितना पीड़ामय व्यभिचार॥

अवसर पाकर कभी विनय-नत,
कभी समद तन जाता था।
नरम कभी जल-सा, पावक-सा,
कभी गरम बन जाता था॥

मानसिंह की फूफी से–
अकबर ने कर ली थी शादी।
अहो, तभी से भाग रही है,
कोसों हमसे आजादी॥

हो उठता था विकल देखकर,
मधुर कपोलों की लाली।
पीता था अलि-सा कलियों–
के अधरों की मधुमय प्याली॥

करता था वह किसी जाति की,
कान्त कामिनी से ठनगन।
कामातुर वह कर लेता था,
किसी सुन्दरी का चुम्बन।।

था एक समय कुसुमाकर का,
लेकर उपवन मे बाल हिरन।
वन-छटा देख कुछ उससे ही,
गुनगुना रही थी बैठ किरन।।

वह राका-शशि की ज्योत्स्ना-सी,
वह नव वसन्त की सुखमा-सी।
बैठी बखेरती थी शोभा.
छवि देख धन्य थे वन-वासी।।

आँखों में मद की लाली थी,
गालों पर छाई अरुणाई।
कोमल अधरों की शोभा थी,
विद्रुम-कलिका-सी खिल आई।।

तन-कान्ति देखने को अपलक.
थे खुले कुसुम-कुल-नयन बन्द।
उसकी साँसों की सुरभि पवन,
लेकर बहता था मन्द-मन्द।।

पट मे तन, तन मे नव यौवन,
नव यौवन में छवि-माला थी।
छवि-माला के भीतर जलती,
पावन-सतीत्व की ज्वाला थी।।

थी एक जगह जग की शोभा,
कोई न देह में अलंकार।
केवल कटि में थी बँधी एक,
शोणित-प्यासी तीखी कटार।।

हाथों से सुहला सुहलाकर,
नव बाल हिरन का कोमल-तन।
विस्मित-सी उससे पूछ रही,
वह देख देख वन-परिवर्तन॥

"कोमल कुसुमों में मुस्काता,
छिपकर आनेवाला कौन?
बिछी हुई पलकों के पथ पर,
छवि दिखलानेवाला कौन?

बिना बनाये बन जाते वन,
उन्हें बनानेवाला कौन?
कीचक के छिद्रों में बसकर,
बीन बजाने वाला कौन?

कल-कल कोमल कुसुम-कुञ्ज पर,
मधु बरसाने वाला कौन?
मेरी दुनिया में आता है,
है वह आने वाला कौन?

छुमछुम छननन रास मचाकर,
बना रहा मतवाला कौन?
मुसकाती जिससे कलिका है,
है वह किस्मत वाला कौन?

बना रहा है मत्त पिलाकर,
मंजुल मधु का प्याला कौन?
फैल रही जिसकी महिमा है,
है वह महिमावाला कौन?

मेरे बहु विकसित उपवन का,
विभव बढ़ाने वाला कौन?
विटप-निचय के पूत पदों पर,
पुष्प चढ़ाने वाला कौन?

फैलाकर माया मधुकर को,
मुग्ध बनाने वाला कौन?
छिपे छिपे मेरे आँगन में,
हँसता आनेवाला कौन?

महक रहा है मलयानिल क्यों?
होती है क्यों कैसी कूक?
बौरे-बौरे आमो का है,
भाव और भाषा क्यों मूक॥"

वह इसी तरह थी प्रकृति-मग्न,
तब तक आया अकबर अधीर।
धीरे से बोला युवती से,
वह कामातुर कम्पित-शरीर--

"प्रेयसि! गालों की लाली में,
मधु-भार भरा, मृदु प्यार भरा।
रानी, तेरी चल चितवन में,
मेरे उर का संसार भरा॥

मेरे इन प्यासे अधरों को,
तू एक मधुर चुम्बन दे दे।
धीरे से मेरा मन लेकर,
धीरे से अपना मन दे दे॥"

यह कहकर अकबर बढा सभय,
उस सती सिंहनी के आगे।
जागे उसके कुल के गौरव,
पावन-सतीत्व उर के जागे॥

शिशोदिया-कुल-कन्या थी,
वह सती रही पाञ्चाली-सी।
क्षत्राणी थी चढ़ बैठी,
उसकी छाती पर काली-सी॥

कहा डपटकर—"बोल प्राण लूँ,
या छोड़ेगा यह व्यभिचार?"
बोला अकबर—"क्षमा करो अब,
देवि! न होगा अत्याचार॥"

जब प्रताप सुनता था ऐसी,
सदाचार की करुण-पुकार।
रण करने के लिए म्यान से,
सदा निकल पड़ती तलवार॥

तृतीय सर्ग

अट्ठासी पंक्ति

सहृदय प्रतिद्वन्द्वी अकबर

अखिल हिन्द का था सुलतान
मुगल-राज-कुल का अभिमान।
बढ़ा चढ़ा था गौरव-मान,
उसकी कहीं न था उपमान।।

उससे अधिक राज-विस्तार
धन का रहा न पारावार
राज-द्वार पर जय जयकार
भय से डगमग था संसार।

नभ-चुम्बी विस्तृत अभिराम,
धवल मनोहर चित्रित-धाम।
भीतर नव उपवन आराम,
बजते थे बाजे अविराम।।

संगर की सरिता कर पार,
कहीं दमकते थे हथियार।
शोणित की प्यासी खरधार,
कहीं चमकती थी तलवार।।

स्वर्णिम घर में शीत प्रकाश,
जलते थे मणियों के दीप।
धोते आँसू-जल से चरण,
देश-देश के सकल महीप।।

तो भी कहता था सुल्तान,
पूरा कब होगा अरमान।
कब मेवाड़ मिलेगा आन,
राणा का होगा अपमान॥

देख देख भीषण षड्यन्त्र,
सबने मान लिया है मन्त्र।
पर वह कैसा वीर स्वतन्त्र,
रह सकता न क्षणिक परतन्त्र॥

कैसा है जलता अंगार,
कैसा उसका रण-हुङ्कार।
कैसी है उसकी तलवार,
अभय मचाती हाहाकार॥

कितना चमक रहा है भाल,
कितनी तनु कटि, वक्ष विशाल।
उससे जननी-अंक निहाल,
धन्य-धन्य माई का लाल॥

कैसी है उसकी ललकार,
कैसी है उसकी किलकार।
कैसी चेतक-गति अविकार,
कैसी असि कितनी खरधार॥

कितने जन कितने सरदार,
कैसा लगता है दरबार।
उस पर क्यों इतने बलिहार,
उस पर जन-रक्षा का भार॥

किसका वह जलता अभिशाप,
जिसका इतना भैरव-ताप।
कितना उसमें भरा प्रताप,
अरे! अरे! साकार प्रताप॥

कैसा भाला कैसी म्यान,
कितना नत कितना उत्तान।
पतन नहीं दिन-दिन उत्थान,
कितना आजादी का ध्यान।।

कैसा गोरा-काला रग,
जिससे सूरज शशि बदरग।
जिससे वीर सिपाही तग,
जिससे मुगल-राज है दंग।।

कैसी ओज-भरी है देह,
कैसा आँगन कैसा गेह।
कितना मातृ-चरण पर नेह,
उसको छू न गया सन्देह।।

कैसी है मेवाड़ी-आन,
कैसी है रजपूती शान।
जिस पर इतना है कुर्बान,
जिस पर रोम-रोम बलिदान।।

एक बार भी मान-समान,
मुकुट नवा करता सम्मान।
पूरा हो जाता अरमान,
मेरा रह जाता अभिमान।।

यही सोचते दिन से रात,
और रात से कभी प्रभात।
होता जाता दुर्बल गात,
यद्यपि सुख था वैभव-जात।।

कुछ दिन तक कुछ सोच विचार,
करने लगा सिंह पर वार।
छिपी छुरी का अत्याचार,
रुधिर चूसने का व्यापार।।

करता था जन पर आघात,
उनसे मीठी मीठी बात।
बढ़ता जाता था दिन-रात,
वीर-शत्रु का यह उत्पात॥

इधर देखकर अत्याचार,
सुनकर जन की करुण-पुकार।
रोक शत्रु के भीषण-वार,
चेतक पर हो सिंह सवार॥

कह उठता था बारबार,
हाथों मे लेकर तलवार—
वीरो, हो जाओ तैयार,
करना है माँ का उद्धार॥

चतुर्थ सर्ग

अट्ठासी पंक्ति

काँटो पर मृदु कोमल फूल.
पावक की ज्वाला पर तूल।
सुई-नोक पर पथ की धूल,
बनकर रहता था अनुकूल।।

बाहर से करता सम्मान.
वह जजिया-कर लेता था न।
कूटनीति का तना वितान,
उसके नीचे हिन्दुस्तान।।

अकबर कहता था हर बार,
हिन्दू मजहब पर बलिहार।
मेरा हिन्दू से सत्कार,
मुझसे हिन्दू का उपकार।।

यही मौलवी से भी बात,
कहता उत्तम है इस्लाम।
करता इसका सदा प्रचार,
मेरा यह निशि दिन का काम।।

उसकी यही निराली चाल,
मुसलमान हिन्दू सब काल।
उस पर रहते सदा प्रसन्न,
कहते उसे सरल महिपाल।।

कभी तिलक से शोभित भाल,
साफा कभी शीश पर ताज।
मस्जिद मे जाकर सविनोद,
पढता था वह कभी नमाज॥

एक बार की सभा विशाल,
जान सुदिन, शुभ-ग्रह, शुभ-योग।
करने आये धर्म-विचार,
दूर दूर से ज्ञानी लोग॥

तना गगन पर एक वितान,
नीचे बैठी सुधी-जमात।
ललित-झाड की जगमग ज्योति,
बरती रहती थी दिन-रात॥

एक ओर पण्डित-समुदाय,
एक ओर बैठे सरदार।
एक ओर बैठा भूपाल,
मणि-चौकी पर आसन मार॥

पण्डित-जन के शास्त्र-विचार,
सुनना सदा लगाकर ध्यान।
हिला हिला कर शिर सविनोद,
मन्द मन्द करना मुसकान॥

कभी मौलवी की भी बात,
सुनकर होता मुदित महान।
मोह-मग्न हो जाता भू,
कभी धर्म-मय सुनकर गान॥

पाकर मानव महानुभूति,
अपने को जाता है भूल।
वशी-भूत होकर सब काम,
करता है अपने प्रतिकूल॥

माया-वलित सभा के बीच,
यही हो गया सबका हाल।
जादू का पड़ गया प्रभाव,
सबकी मति बदली तत्काल॥

एक दिवस सुन सबकी बात,
उन पर करके क्षणिक विचार।
बोल उठा होकर गम्भीर,
सब धर्मों से जन-उद्धार॥

पर मुझमे भी करके क्लेश,
सुनिए ईश्वर का सन्देश।
मालिक का पावन आदेश,
उस उपदेशक का उपदेश॥

प्रभु का मसृति पर अधिकार,
उसका मै धावन अविकार।
यह भव-सागर कठिन अपार,
दीन-इलाही मे उद्धार॥

इसका करना जो विश्वास,
उसको तनिक न जग का त्रास।
उसकी बुझ जाती है प्यास,
उसके जन्म-मरण का नाश॥

इससे बढ़ा सुयश-विस्तार,
दीन-इलाही का सत्कार।
बुध जन को तज राज-विचार,
सबने किया सभय स्वीकार॥

हिन्दू-जनता ने अभिमान,
छोड़ा रामायण का गान।
दीन-इलाही पर कुर्बान,
मुसलमान मे अलग कुरान॥

तनिक न ब्राह्मण-कुल उत्थान,
रही न क्षत्रियपन की आन।
गया वैश्य-कुल का सम्मान,
शूद्र जाति का नाम-निशान।।

राणा प्रताप से अकबर से,
इस कारण वैर विरोध बढा।
करते छल छद्म परस्पर थे,
दिन-दिन दोनो का क्रोध बढ़ा।।

कूटनीति सुनकर अकबर की,
राणा जो गिनगिना उठा।
रण करने के लिए शत्रु से,
चेतक भी हिनहिना उठा।।

पंचम सर्ग

तीन सौ अट्ठाईस पंक्ति

वक्ष भरा रहता अकबर का,
सुरभित जय-माला से।
सारा भारत भभक रहा था,
क्रोधानल - ज्वाला से॥

रत्न-जटित मणि सिंहासन था,
मण्डित रणधीरों से।
उसका पद जगमगा रहा था,
राजमुकुट - हीरों से॥

जग के वैभव खेल रहे थे,
मुगल-राज थाती पर।
फहर रहा था अकबर का,
झण्डा नभ की छाती पर॥

यह प्रताप यह विभव मिला,
पर एक मिला था वादी।
रह रह काँटों-सी चुभती थी,
राणा की आजादी॥

कहा एक वासर अकबर ने—
"मान, उठा लो भाला।
शोलापुर को जीत पिन्हा दो,
मुझे विजय की माला॥

हय-गज-दल पैदल रथ ले लो,
मुगल-प्रताप बढ़ा दो।
राणा से मिलकर उसको भी,
अपना पाठ पढ़ा दो।।

ऐसा कोई यत्न करो बन्धन—
मे कम लेने को।
वही एक विषधर बैठा है,
मुझको डस लेने को।।"

मानसिंह ने कहा—"आपका,
हुकुम सदा शिर पर है।
बिना सफलता के न मान यह,
आ सकता फिर कर है।।"

यह कह कर उठ गया गर्व मे,
झुककर अदब जनाया।
एक चमू ले कलकल करता,
शोलापुर चढ़ आया।।

युद्ध ठानकर मानसिंह ने,
जीत लिया शोलापुर।
भरा विजय के अहकार मे,
उस अभिमानी का उर।।

किसे मौन दूँ, किसे जिला दूँ,
किसका राज हिला दूँ।
लगा सोचने किसे मीजकर,
रज मे आज मिला दूँ।।

किसे हँसा दूँ बिजली-सा मै,
घन-सा किसे रुला दूँ।
कौन विरोधी है मेरा,
फाँसी पर जिसे झुला दूँ।।

बनकर भिक्षुक दीन जन्म भर,
किसे झेलना दुख है।
रण करने की इच्छा से–
जो आ सकता सम्मुख है।।

कहते ही यह ठिठक गया,
फिर धीमे स्वर से बोला।
शोलापुर के विजय-गर्व पर,
गिरा अचानक गोला।।

अहो अभी तो वीर-भूमि–
मेवाड़ - केसरी खूनी।
गरज रहा है निर्भय मुझसे–
लेकर ताकत दूनी।।

स्वतन्त्रता का वीर पुजारी,
सगर - मतवाला है।
शत-शत असि के सम्मुख,
उसका महाकाल भाला है।।

धन्य-धन्य है राजपूत वह,
उसका शिर न झुका है।
अब तक कोई अगर रुका तो,
केवल वही रुका है।।

निज प्रताप-बल से प्रताप ने,
अपनी जोति जगा दी।
हमने तो जो बुझ न सके,
कुछ ऐसी आग लगा दी।।

अहो जाति को तिलाञ्जुली दे,
हुए भार हम भू के।
कहते ही यह ढुलक गये,
दो-चार बूंद आँसू के।।

किन्तु देर तक टिक न सका,
अभिमान जाति का उर में।
क्या विहसेगा विटप लगा है,
यदि कलंक अंकुर में।।

एक घड़ी तक मौन पुनः,
कह उठा मान गरबीला।
देख काल भी डर सकता,
मेरी भीषण - रण-लीला।।

वसुधा का कोना धरकर,
चाहूँ तो विश्व हिला दूँ।
गगन-मही का क्षितिज पकड़,
चाहूँ तो अभी मिला दूँ।।

राणा की क्या शक्ति उसे भी,
रण की कला सिखा दूँ।
मृत्यु लड़े तो उसको भी,
अपने दो हाथ दिखा दूँ।।

पथ में ही मेवाड़ पड़ेगा,
चलकर निश्चय कर लूँ।
मान रहा तो कुशल नहीं तो,
संगर से जी भर लूँ।।

युद्ध महाराणा प्रताप से,
मेरा मचा रहेगा।
मेरे जीते जी कलंक से,
क्या वह बचा रहेगा।।

मानी मान चला सोचा,
परिणाम न कुछ जाने का।
पास महाराणा के भेजा,
समाचार आने का।।

मानसिंह के आने का,
सन्देश उदयपुर आया।
राणा ने भी अमरसिंह को,
अपने पास बुलाया॥

कहा—"पुत्र! मिलने आता है,
मानसिंह अभिमानी।
छल है, तो भी मान करो,
लेकर लोटा भर पानी॥

किसी बात की कमी न हो,
रह जाये आन हमारी।
पुत्र! मान के स्वागत की,
तुम ऐसी करो तयारी॥"

मान लिया आदेश स्वर्ण से,
सजे गये दरवाजे।
मान-मान के लिए मधुर,
बाजे मधु-रव से बाजे॥

जगह जगह पर सजे गये,
फाटक सुन्दर सोने के।
बन्दनवारों से हँसते थे,
घर कोने कोने के॥

जगमग जगमग ज्योति उठी जल,
व्याकुल दरबारी-जन।
नव-गुलाब-वासित पानी से,
किया गया पथ सिचन॥

शीतल-जल-पूरित कंचन के,
कलसे थे द्वारों पर।
चम-चम पानी चमक रहा था,
तीखी तलवारों पर॥

उदयसिंधु के नीचे भी,
बाहर की शोभा छाई।
हृदय खोलकर उसने भी,
अपनी श्रद्धा दिखलाई।।

मधुर-मधुर सुरभित गजरों के–
बोझे से वह था नत।
किया अमर ने धूम धाम से,
मानसिंह का स्वागत।।

कहा देखकर अमरसिंह का,
विकल प्रेम अपने में।
होगा यह सम्मान मुझे–
विश्वास न था सपने में।।

शत-शत तुमको धन्यवाद है,
सुखी रहो जीवन भर।
झरे शीश पर सुमन सुयश के,
अम्बर-तल से झर-झर।।

धन्यवाद स्वीकार किया–
कर जोड़ पुनः वह बोला।
भावी भीषण-रण का––
दरवाजा धीरे से खोला।।

"समय हो गया भूख लगी है,
चलकर भोजन कर लें।
थके हुए हैं ये मृदु पद,
जल से इनको तर कर लें।।"

सुनकर विनय उठा केवल रख,
पट रेशम का तन पर।
धोकर पद भोजन करने को,
बैठ गया आसन पर।।

देखे मधु पदार्थ पन्ने की,
मृदु प्याली प्याली में।
चावल के सामान मनोहर,
सोने की थाली में॥

घी मे सनी सजी रोटी थी,
रत्नों के बरतन म।
शाक खीर नमकीन मधुर,
चटनी चमचम कचन में॥

मोती झालर मे रक्षित,
रसदार लाल थाली मे।
एक ओर मीठे फल थे,
मणि-तारो की डाली मे॥

तरह तरह के खाद्य-कलित,
चाँदी के नये कटोरे।
भरे खराये घी से देखे,
नीलम के नव खोरे॥

पर न वहाँ भी राणा था–
बस ताड़ गया वह मानी।
रहा गया जब उसे न तब वह–
बोल उठा अभिमानी॥

"अमर्रासह, भोजन का तो,
सामान सभी सम्मुख है।
पर प्रताप का पता नही है,
एक यही अब दुख है॥

मान करो पर मानसिह का–
मान अधूरा होगा।
बिना महाराणा के यह–
आतिथ्य न पूरा होगा॥

जब तक भोजन वे न करेंगे,
एक साथ आसन पर।
तब तक कभी न हो सकता है,
मानसिंह का आदर।।

अमरसिंह, इसलिए उठो तुम,
जाओ मिलो पिता से।
मेरा यह सन्देश कहो,
मेवाड़ - गगन-सविता से।।

बिना आपके वे न ठहर पर,
ठहर सकेंगे क्षण भी।
छू सकते हैं नहीं हाथ से,
चावल का लघु-कण भी।।"

अहो, विपति में देश पड़ेगा,
इसी भयानक तिथि से।
गया लौटकर अमरसिंह फिर,
आया, कहा, अतिथि से।।

"मैं सेवा के लिए आपकी,
तन-मन-धन से आकुल।
प्रभो, करें भोजन वे कैसे,
शिर की पीड़ा से व्याकुल।।"

पथ प्रताप का देख रहा था,
प्रेम न था रोटी में।
सुनते ही वह काँप गया,
लग गई आग चोटी में।।

घोर अवज्ञा से ज्वाला-सी,
लगी दहकने त्रिकुटी।
अधिक क्रोध में वक्र हो गई,
मानसिंह की भृकुटी।।

महाराज मानसिंह

चावल-कण दो एक बाँधकर,
गरज उठा बादल-सा।
मानो भीषण क्रोध-वह्नि से,
गया अचानक जल-सा।।

"कुशल नहीं राणा प्रताप का,
मस्तक की पीड़ा से।
थहर उठेगा अब भूतल,
रण-चण्डी की क्रीड़ा से।।

जिस प्रताप की स्वतन्त्रता के,
गौरव की रक्षा की।
खेद यही है वही मान का—
कुछ रख सका न बाकी।।

बिना हेतु के होगा ही वह,
जो कुछ बदा रहेगा।
किन्तु महाराणा प्रताप अब,
रोता सदा रहेगा।।

मान रहेगा तभी मान का,
हाला घोल उठे जब।
डग-डग-डग ब्रह्माण्ड चराचर,
भय से डोल उठे जब।।"

चकाचौंध-सी लगी मान को,
राणा की मुख-भा से।
अहंकार की बातें सुन,
जब निकला सिंह गुफा से।।

दक्षिण-पद-कर आगे कर,
तर्जनी उठाकर बोला।
गिरने लगा मान-छाती पर,
गरज-गरज कर गोला।।

वज्र-नाद - सा तड़प उठा,
हलचल थी मरदानो मे।
पहुँच गया राणा का वह रव,
अकबर के कानो मे।।

"अरे तुर्क, बकवाद करो मत,
खाना हो तो खाओ।
या बधना का ही शीतल-जल,
पीना हो तो जाओ।।

जो रण को ललकार रहे हो,
तो आकर लड़ लेना।
चढ़ आना यदि चाह रहे,
चित्तौड वीर-गढ़ लेना।।

कहाँ रहे जब स्वतन्त्रता का,
मेरा बिगुल बजा था।
जाति धर्म के मुझ रक्षक को,
तुमने क्या समझा था।।

अभी कहूँ क्या, प्रश्नो का–
रण मे क्या उत्तर दूँगा।
महामृत्यु के साथ-साथ,
जब इधर-उधर लहरूँगा।।

भभक उठेगी जब प्रताप के,
प्रखर तेज की आगी।
तब क्या हूँ बतला दूँगा,
ऐ अम्बर-कुल के त्यागी।।"

अभी मान से राणा से था,
वाद-विवाद लगा ही।
तब तक आगे बढ़कर बोला,
कोई वीर - सिपाही।।

"करो न रकझक लड़कर ही,
अब साहस दिखलाना तुम।
भगो, भगो अपने फूफे को भी,
लेते आना तुम।।"

महा महा अपमान देखकर,
बढी क्रोध की ज्वाला।
मान कड़ककर बोल उठा फिर,
पहन अर्चि की माला।।

"मानसिह की आज अवज्ञा,
कर लो और करा लो।
बिना विजय के ऐ प्रताप,
तुम विजय-केतु फहरा लो।।

पर इसका मै बदला लूँगा,
अभी चन्द दिवसो मे।
झुक जाओगे भर दूँगा जब,
बरती आग नसों मे।।

ऐ प्रताप, तुम सजग रहो,
अब मेरी ललकारो से।
अकबर के विकराल क्रोध से,
तीखी तलवारों से।।

ऐ प्रताप, तैयार रहो मिटने–
के लिए रणो मे।
हाथों मे हथकड़ी पहनकर,
बेड़ी निज चरणों मे।।

मानसिह-दल बन जायेगा,
जब भीषण-रण पागल।
ऐ प्रताप, तुम झुक जावोगे,
रुक जायेगा सेना-बल।।

ऐ प्रताप, तुम सिहर उठो,
साँपिन - सी करवालो से।
ऐ प्रताप, तुम भभर उठो,
तीखे-तीखे भालो से॥

गिनो मृत्यु के दिन" कहकर,
घोड़े को सरपट छोड़ा।
पहुँच गया दिल्ली उड़ता वह,
वायु-वेग से घोड़ा॥

इधर महाराणा प्रताप ने,
सारा घर खुदवाया।
धर्म-भीरु ने बार-बार,
गंगा-जल से धुलवाया॥

उतर गया पानी, प्यासा था,
तो भी पिया न पानी।
उदय-सिन्धु था निकट डर गया,
अपना दिया न पानी॥

राणा द्वारा मानसिह का,
यह जो मान-हरण था।
हल्दीघाटी के होने का,
यही मुख्य कारण था॥

लगी सुलगने आग समर की,
भीषण - आग लगेगी।
प्यासी है, अब वीर-रक्त से,
माँ की प्यास बुझेगी॥

स्वतन्त्रता का कवच पहन,
विश्वास जमाकर भाला में।
कूद पड़ा राणा प्रताप उस–
समर-वह्नि की ज्वाला मे॥

षष्ठ सर्ग

एक सौ बावन पंक्ति

नीलम मणि के बन्दनवार,
उनमें चाँदी के मृदु-तार।
जातरूप के बने किवार,
सजे कुसुम से हीरक-द्वार॥

दिल्ली के उज्ज्वल हर द्वार,
चमचम कंचन कलश अपार।
जलमय कुश पल्लव सहकार,
शोभित उन पर कुसुमित हार॥

लटक रहे थे तोरण जाल,
बजती शहनाई हर काल।
उछल रहे थे सुन स्वर ताल,
पथ पर छोटे छोटे बाल॥

बजते झाँझ नगारे ढोल,
गायक गाते थे उर खोल।
जय जय नगर रहा था बोल,
विजय-ध्वजा उड़ती अनमोल॥

घोड़े हाथी सजे सवार,
सेना सजी, सजा दरबार।
गरज गरज तोपें अविराम,
छूट रही थी बारंबार॥

झण्डा हिलता अभय समान,
मादक-स्वर से स्वागत-गान।
छाया था जय का अभिमान,
भू था अमल गगन अम्लान॥

दिल्ली का विस्तृत उद्यान,
विहस उठा ले सुरभि-निधान।
था मंगल का स्वर्ण-बिहान,
पर अतिशय चिन्तित था मान॥

सुनकर शोलापुर की हार,
एक विशेष लगा दरबार।
आये दरबारी सरदार,
पहनेगा अकबर जय-हार॥

बैठा भूप सहित अभिमान,
पर न अभी तक आया मान।
दुख से कहता था सुल्तान,
कहाँ रह गया मान महान॥

तब तक चिन्तित आया मान,
किया सभी ने उठ सम्मान।
थोड़ा-सा उठकर सुल्तान,
बोला आओ बैठो मान॥

की अपनी छाती उत्तान,
अब आई मुख पर मुस्कान।
किन्तु मान-मुख पर दे ध्यान,
भय से बोल उठा सुल्तान॥

"ऐ मेरे उर के अभिमान,
शोलापुर के विजयी मान।
है किस ओर बता दे ध्यान,
क्यों तेरा मुख-मण्डल म्लान॥

तेरे स्वागत में मधु-गान,
जगह जगह पर तने वितान।
क्या दुख है बतला दे मान,
तुझ पर यह दिल्ली कुर्बान॥"

अकबर के सुन प्रश्न उदार,
देख सभासद-जन के प्यार।
लगी ढरकने बारम्बार,
आँखो से आँसू की धार॥

दुख के उठे विषम उद्‌गार,
सोच सोच अपना अपकार।
लगा सिसकने मान अपार,
थर-थर काँप उठा दरबार॥

घोर अवज्ञा का कर ध्यान,
बोला सिसक-सिसक कर मान।
"तेरे जीते जी सुल्तान,
ऐसा हो मेरा अपमान॥"

सबने कहा अरे, अपमान!
मानसिंह, तेरा अपमान!
"हाँ, हाँ मेरा ही अपमान,
सरदारो! मेरा अपमान॥"

कहकर रोने लगा अपार,
विकल हो रहा था दरबार।
रोते ही बोला—"सरकार,
असहनीय मेरा अपकार॥

ले सिंहासन का सन्देश,
शिर पर तेरा ले आदेश।
गया निकट मेवाड़-नरेश,
यही व्यथा है यह ही क्लेश॥

आँखों मे लेकर अगार,
क्षण-क्षण राणा की फटकार।
तुझको खुले नरक के द्वार,
तुझको जीवन भर धिक्कार।।

तेरे दर्शन से सताप,
तुझको छूने से ही पाप।
हिन्दू-जनता का परिताप,
तू है अम्बर-कुल पर शाप।।

स्वामी है अकबर सुल्तान,
तेरे साथी मुगल पठान।
राणा से तेरा सम्मान,
कभी न हो सकता है मान।।

करता भोजन से इनकार,
अथवा कुत्ते सम स्वीकार।
इसका आज न तनिक विचार,
तुझको लानत सौ सौ बार।।

म्लेच्छ-वश का तू सरदार,
तू अपने कुल का अंगार।
इस पर यदि उठती तलवार,
राणा लड़ने को तैयार।।

उसका छोटा-सा सरदार,
मुझे द्वार से दे दुत्कार।
कितना है मेरा अपकार,
यही बात खलती हर बार।।

शेष कहा जो उसने, आज
कहने मे लगती है लाज।
उसे समझ ले तू सिरताज,
और बन्धु यह यवन-समाज।।"

वर्णन के थे शब्द ज्वलन्त,
बढे अचानक ताप अनन्त।
सबने कहा यकायक हन्त,
अब मेवाड देश का अन्त॥

बैठे थे जो यवन अमीर,
लगा हृदय मे उनके तीर।
अकबर का हिल गया शरीर,
सिहासन हो गया अधीर॥

कहाँ पहनना वह जयमाल,
उर मे लगी आग विकराल।
आँखे कर लोहे सम लाल,
भभक उठा अकबर तत्काल॥

कहा—"न रह सकता चुपचाप,
सह सकता न मान-संताप।
बढा हृदय का मेरे ताप,
आन रहे, या रहे प्रताप॥

वीरो, अरि को दो ललकार,
उठो, उठा लो भीम-कटार।
घुसा-घुसा अपनी तलवार,
कर दो सीने के उस पार॥

महा महा भीषण-रण ठान,
ए भारत के मुगल पठान।
रख लो सिहासन की शान,
कर दो अब मेवाड़ स्मशान॥

है न तिरस्कृत केवल मान,
मुगल-राज का भी अपमान।
रख लो मेरी अपनी आन,
कर लो हृदय-रक्त का पान॥

ले लो सेना एक विशाल,
मान, उठा लो कर से ढाल।
शक्तसिंह, ले लो करवाल,
बदला लेने का है काल॥

सरदारो, अब करो न देर,
हाथो मे ले लो शमशेर।
वीरो, लो अरि-दल को घेर,
कर दो काट काट कर ढेर॥

क्षण भर मे निकले हथियार,
बिजली-सी चमकी तलवार।
घोडे हाथी सजे अपार,
रण का भीषण-तम हुङ्कार॥

ले सेना होकर उत्तान,
ले करवाल - कटार - कमान।
चला चुकाने बदला मान,
हल्दीघाटी के मैदान॥

मानसिंह का यह प्रस्थान,
सत्य-अहिंसा का बलिदान।
कितना हृदय-विदारक ध्यान,
शत-शत पीड़ा का उत्थान॥

सप्तम सर्ग

एक सौ चौरासी पंक्ति

अभिमानी - मान-अवज्ञा से,
थर-थर होने संसार लगा।
पर्वत की उन्नत चोटी पर,
राणा का भी दरबार लगा।।

अम्बर पर एक वितान तना,
बलिहार अछूती आनो पर।
मखमली बिछौना बिछा अमल,
चिकने-चिकने चट्टानों पर।।

शुचि सजी शिला पर राणा भी,
बैठा अहि सा फुङ्कार लिये।
फर-फर झण्डा था फहर रहा,
भावी रण का हुङ्कार लिये।।

भाला-बरछी-तलवार लिये,
आये खरधार कटार लिये।
धीरे-धीरे झुक-झुक बैठे,
सरदार सभी हथियार लिये।।

तरकस में कस कस तीर भरे,
कन्धो पर कठिन कमान लिये।
सरदार भील भी बैठ गये,
झुक-झुक रण के अरमान लिये।।

जब एक एक जन को समझा,
जननी-पद पर मिटने वाला।
गम्भीर भाव से बोल उठा,
वह वीर उठा अपना भाला।।

तरु-तरु के मृदु सगीत रुके,
मारुत ने गति को मन्द किया।
सो गये सभी सोने वाले,
खग-गण ने कलरव बन्द किया।।

राणा की आज मदद करने,
चढ चला इन्दु नभ-जीने पर।
झिलमिल तारक-सेना भी आ,
डट गई गगन के सीने पर।।

गिरि पर थी बिछी रजत-चादर,
गह्वर के भीतर तम-विलास।
कुछ कुछ करता था तिमिर दूर,
जुग-जुग जुगनू का लघु-प्रकाश।।

गिरि अरावली के तरु के थे,
पत्ते पत्ते निष्कम्प अचल।
वन-बेलि-लता-लतिकायें भी,
सहसा कुछ सुनने को निश्चल।।

था मौन गगन, नीरव रजनी,
नीरव सरिता, नीरव तरंग।
केवल राणा का सदुपदेश,
करता निशीथिनी-नीद भंग।।

वह बोल रहा था गरज-गरज,
रह रह कर मे असि चमक रही।
रव-वलित बरसते बादल मे,
मानों बिजली थी दमक रही।।

"सरदारो, मान-अवज्ञा से,
माँ का गौरव बढ गया आज।
दबने न किसी से राजपूत,
अब समझेगा वैरी-समाज॥

वह मान महा अभिमानी है,
बदला लेगा ले बल अपार।
कटि कस लो अब मेरे वीरो,
मेरी भी उठती है कटार॥

भूलो इन महलो के विलास,
गिरि-गुहा बना लो निज-निवास।
अवसर न हाथ से जाने दो,
रण-चण्डी करती अट्टहास॥

लोहा लेने को तुला मान,
तैयार रहो अब साभिमान।
वीरो, बतला दो उसे अभी,
क्षत्रियपन की है बची आन॥

साहस दिखलाकर दीक्षा दो,
अरि को लडने की शिक्षा दो।
जननी को जीवन-भिक्षा दो,
ले लो असि वीर-परीक्षा दो॥

रख लो अपनी मुख-लाली को,
मेवाड-देश हरियाली को।
दे दो नर-मुण्ड कपाली को,
शिर काट काट कर काली को॥

विश्वास मुझे निज वाणी का,
है राजपूत-कुल-प्राणी का।
वह हट सकता है वीर नही,
यदि दूध पिया क्षत्राणी का।

नश्वर तन को डट जाने दो,
अवयव-अवयव छट जाने दो।
परवाह नही, कटते हो तो,
अपने को भी कट जाने दो।।

अब उड जाओ तुम पाँखो मे,
तुम एक रहो अब लाखो मे।
वीरो, हलचल सी मचा, मचा,
तलवार घुसा दो आँखो मे।।

यदि सके शत्रु को मार नही,
तुम क्षत्रिय वीर-कुमार नही।
मेवाड़-सिह मरदानो का,
कुछ कर सकती तलवार नही।।

मेवाड - देश, मेवाड - देश,
समझो यह है मेवाड-देश।
जब तक दुख मे मेवाड़-देश,
वीरो, तब तक के लिए क्लेश।।

सन्देश यही, उपदेश यही,
कहता है दुर्बल देश यही।
दिखला दो अपना आत्म-त्याग,
राणा का है आदेश यही।।

अब से मुझको भी हाम शपथ,
रमणी का वह मधुमास शपथ।
रति-केलि शपथ, भुजपाश शपथ,
महलो के भोग-विलास शपथ।।

सोने चाँदी के पात्र शपथ,
हीरा-मणियो के हार शपथ।
माणिक-मोती से कलित-ललित,
अब से तन के शृगार शपथ।।

गायक के मधुमय गान शपथ,
कवि की कविता की तान शपथ।
रस-रग शपथ, मधुपान शपथ,
अब से मुख पर मुसकान शपथ॥

मोती-झालर से सजी हुई,
वह सुकुमारी-सी सेज शपथ।
यह निरपराध जग थहर रहा,
जिसमे वह राजस-तेज शपथ॥

पद पर जग-वैभव लोट रहा,
वह राज-भोग सुख-साज शपथ।
जगमग जगमग मणि-रत्न-जटित,
अब से मुझको यह ताज शपथ॥

जब तक स्वतन्त्र यह देश नही,
है कट सकता नख-केश नही।
मरने कटने का क्लेश नही,
कम हो सकता आवेश नही॥

परवाह नही, परवाह नही,
मै हूं फकीर अब शाह नही।
मुझको दुनिया की चाह नही,
पर सह सकता जन-आह नही॥

अरि-सागर तो कुम्भज समझो,
वैरी-नरु तो दिग्गज समझो।
आँखो मे जो पट जाता वह,
अवनी का मुझको रज समझो॥

यह तो जननी की ममता है,
जननी भी शिर पर हाथ न दे।
मुझको इसकी परवाह नही,
चाहे कोई भी साथ न दे॥

विष बीज न मैं बोने दूँगा,
अरि को न कभी सोने दूँगा।
शुचि दूध कलंकित माता का,
पर मैं न कभी होने दूँगा॥"

प्रण थिरक उठा पक्षी-स्वर में,
सूरज-मयक-तारक-कर में।
प्रतिध्वनि ने उसको दुहराया,
निज काय छिपाकर अम्बर में॥

पहले राणा के अन्तर में,
गिरि अरावली के गह्वर में।
फिर गूँज उठा वसुधा भर में,
वैरी-समाज के घर-घर में॥

बिजली सी गिरी जवानों में,
हलचल-सी मची प्रधानों में।
वह भीष्म प्रतिज्ञा घहर पड़ी,
तत्क्षण अकबर के कानों में॥

प्रण सुनते ही रण-मतवाले,
सब उछल पड़े ले ले भाले।
उन्नत मस्तक कर बोल उठे—
"अरि पड़े न हम सबके पाले॥

हम राजपूत, हम राजपूत,
मेवाड-सिंह, हम राजपूत।
तेरी पावन आज्ञा शिर पर,
क्या कर सकते यमराज-दूत॥

लेना न चाहते अब विराम,
देना रण हमको स्वर्ग-धाम।
छिड जाने दे अब महायुद्ध,
करते तुझको शत-शत प्रणाम॥

अब देर न कर सज जाने दे,
रण-भेरी भी बज जाने दे।
अरि-मस्तक पर चढ़ जाने दे,
हमको आगे बढ़ जाने दे॥

लड़कर अरि-दल को दर दे हम,
दे दे आज्ञा ऋण भर दे हम।
अब महायज्ञ में आहुति बन,
अपने को स्वाहा कर दे हम॥

मुरदे अरि तो पहले से थे,
छिप गये कबर मे जिन्दे भी,
'अब महायज्ञ में आहुति बन',
रटने लग गये परिन्दे भी॥"

पौ फटी, गगन-दीपावलियाँ,
बुझ गई मलय के झोंकों से।
निशि, पश्चिम, विधु के साथ चली,
डर कर भालों की नोकों से॥

दिनकर शिर काट दनुज-दल का,
खूनी तलवार लिये निकला।
कहता इस तरह कटक काटो,
कर मे अंगार लिये निकला॥

रँग गया रक्त से प्राची-पट,
शोणित का सागर लहर उठा।
पीने के लिए मुगल-शोणित,
भाला राणा का हहर उठा॥

अष्टम सर्ग

एक सौ चालीस पंक्ति

रण-यात्रा

गणपति के पावन पाँव पूज,
वाणी-पद का कर नमस्कार।
उस चण्डी का, उस दुर्गा का,
काली-पद का कर नमस्कार॥

उस कालकूट पीने वाले के–
नयन याद कर लाल-लाल।
डग-डग ब्रह्माण्ड हिला देता,
जिसके ताण्डव का ताल-ताल॥

ले महाशक्ति से शक्ति भीख,
व्रत रख वनदेवी रानी का।
निर्भय हो कर लिखता हूँ मैं,
ले आशीर्वाद भवानी का॥

मुझको न किसी का भय-बन्धन,
क्या कर सकता संसार अभी।
मेरी रक्षा करने को जब,
राणा की है तलवार अभी॥

मनभर लोहे की कवच पहन,
कर एकलिङ्ग को नमस्कार।
चल पड़ा वीर, चल पड़ी साथ,
जो कुछ सेना थी लघु-अपार॥

घन-घन-घन-घन-घन गरज उठे,
रण-वाद्य सूरमा के आगे।
जागें पुश्तैनी साहस-बल,
वीरत्व वीर-उर के जागे।।

सैनिक राणा के रण जागे,
राणा प्रताप के प्रण जागे।
जौहर के पावन क्षण जागे,
मेवाड़-देश के व्रण जागे।।

जागे शिशोदिया के सपूत,
बापा के वीर-बबर जागे।
बरछे जागे, भाले जागे,
खन-खन तलवार तबर जागे।।

कुम्भल गढ़ से चलकर राणा,
हल्दीघाटी पर ठहर गया।
गिरि अरावली की चोटी पर,
केसरिया-झण्डा फहर गया।।

प्रणवीर अभी आया ही था,
अरि साथ खेलने को होली।
तब तक पर्वत-पथ से उतरा,
पुंजा ले भीलों की टोली।।

भैरव-रव से जिनके आगे,
रण के बजते बाजे आये।
इंगित पर मर मिटने वाले,
वे राजे-महराजे आये।।

सुनकर जय हर-हर सैनिक-रव,
वह अचल अचानक जाग उठा।
राणा को उर से लगा लिया,
चिर-निद्रित जग अनुराग उठा।।

नभ की नीली चादर ओढे,
युग-युग से गिरिवर सोता था।
तरु-तरु के कोमल पत्तों पर,
मारुत का नर्तन होता था॥

चलते चलते जब थक जाता,
दिनकर करता आराम वहीं।
अपनी तारक-माला पहने,
हिमकर करता विश्राम वहीं॥

गिरि-गुहा-कन्दरा के भीतर,
अज्ञान-सदृश था अन्धकार।
बाहर पर्वत का खण्ड खण्ड,
था ज्ञान-सदृश उज्ज्वल अपार॥

वह भी कहता था अम्बर से,
मेरी छाती पर रण होगा।
जननी-सेवक-उर-शोणित से,
पावन मेरा कण-कण होगा॥

पाषाण-हृदय भी पिघल पिघल,
आँसू बनकर गिरता झर झर।
गिरिवर भविष्य पर रोता था,
जग कहता था उसको निर्झर॥

वह लिखता था चट्टानों पर,
राणा के गुण अभिमान सजल।
वह सुना रहा था मृदु-स्वर से,
सैनिक को रण के गान सजल॥

वह चला चपल निर्झर झर-झर,
वसुधा-उर-ज्वाला खोने को;
या थके महाराणा-पद को,
पर्वत से उतरा धोने को॥

लघु लघु लहरो मे ताप विकल,
दिनकर दिन भर मुख धोता था।
निर्मल निर्झर जल के अन्दर,
हिमकर रजनी भर सोता था॥

राणा पर्वत-छवि देख रहा
था, उन्नत कर अपना भाला।
थे विटप खडे पहनाने को,
लेकर मृदु कुसुमो की माला॥

लाली के साथ निखरती थी,
पल्लव पल्लव की हरियाली।
डाली डाली पर बोल रही–
थी कुहू-कुहू कोयल काली॥

निर्झर की लहरें चूम-चूम,
फूलो के वन मे घूम-घूम।
मलयानिल बहता मन्द-मन्द,
बौरे आमो मे झूम-झूम॥

जब तुहिन-भार से चलता था,
धीरे धीरे मारुत-कुमार।
तब कुसुम-कुमारी देख-देख,
उस पर हो जाती थी निसार॥

उड़ उड़ गुलाब पर बैठ बैठ,
करते थे मधु का पान मधुप।
गुन-गुन-गुन-गुन-गुन कर करते,
राणा के यश का गान मधुप॥

लोनी लतिका पर झूल-झूल,
बिखराते कुसुम पराग प्यार।
हँस-हँस कर कलियाँ झाँक रही–
थी खोल पँखुरियों के किवार॥

तरु-तरु पर बैठे मृदु-स्वर से,
गाते थे स्वागत-गान शकुनि।
कहते यह ही बलिवेदी है,
इस पर कर दो बलिदान शकुनि।।

केसर से निर्झर-कूल लाल,
फूले पलास के फूल लाल।
तुम भी वैरी-शिर काट-काट,
कर दो शोणित मे धूल लाल।।

तुम तरजो तरजो वीर रखो,
अपना गौरव अभिमान यही।
तुम गरजो-गरजो सिह करो,
रण-चण्डी का आह्वान यही।।

खग-रव सुनते ही रोम-रोम,
राणा-तन के फरफरा उठे।
जरजरा उठे सैनिक अरि पर,
पत्ते-पत्ते थरथरा उठे।।

तरु के पत्तो से, तिनकों से,
बन गया वही पर राजमहल।
उस राजकुटी के वैभव से,
अरि का सिहासन गया दहल।।

बस गये अचल पर राजपूत,
अपने अपने रख ढाल-प्रबल।
जय बोल उठे राणा की रख,
बरछे-भाले-करवाल प्रबल।।

राणा प्रताप की जय बोले,
अपने नरेश की जय बोले।
भारत-माता की जय बोले,
मेवाड़-देश की जय बोले।।

जय एकलिङ्ग, जय एकलिङ्ग,
जय प्रलयंकर शकर हर-हर।
जय हर-हर गिरि का बोल उठा,
कड़-कंकड़, पत्थर-पत्थर।।

देने लगा महाराणा—
दिन-रात समर की शिक्षा।
फूंक-फूंक भेरी वैरी की—
करने लगा प्रतीक्षा।।

नवम सर्ग

एक सौ छत्तीस पंक्ति

धीरे से दिनकर द्वार खोल,
प्राची से निकला लाल-लाल।
गह्वर के भीतर छिपी निशा,
बिछ गया अचल पर किरण-जाल।।

सन-सन-सन-सन-सन चला पवन,
मुरझा-मुरझा कर गिरे फूल।
बढ़ चला तपन, चढ़ चला ताप,
धू-धू करती चल पड़ी धूल।।

तन झुलस रही थी लू-लपटें,
तरु-तरु-पद में लिपटी छाया।
तर-तर चल रहा पसीना था,
छन-छन जलती जग की काया।।

पड़ गया कहीं दोपहरी में,
वह तृषित पथिक हुन गया वहीं।
गिर गया कहीं कन भूतल पर,
वह भूभुर में भुन गया वहीं।।

विधु के वियोग से विकल मूक,
नभ जला रहा था अपना उर।
जलती थी धरती तवा-सदृश,
पथ का रज भी था बना भउर।।

उस दोपहरी में चुपके से–
खोतों खोतों में चंचु खोल।
आतप के भय से बैठे थे,
खग मौन-तपस्वी-सम अबोल।।

हर ओर नाचती दुपहरिया,
मृग इधर-उधर थे डौक रहे।
जन भिगो-भिगो पट, ओढ-ओढ,
जल पी पी पखे हौक रहे।।

रवि आग उगलता था भूपर,
अदहन सरिता-सागर अपार।
कर से चिनगारी फेंक फेंक,
जग फूँक रहा था बार-बार।।

गिरि के रोडे अगार बने,
भनते थे शेर कछारो में।
इससे भी ज्वाला अधिक रही,
उन वीर-व्रती-तलवारो में।।

आतप की ज्वाला में छिपकर,
बैठे थे सगर-वीर भील।
पर्वत पर तरु की छाया में,
थे बहस रहे रणधीर भील।।

उन्नत मस्तक कर कहते थे,
ले लेकर कुन्त कमान तीर।
माँ की रक्षा के लिए आज,
अर्पण है यह नश्वर शरीर।।

हम अपनी इन करवालो से,
शोणित का पान करा देगे।
हम काट-काट कर वैरी-शिर,
संगर-भू पर बिखरा देंगे।।

हल्दीघाटी - रण - प्रागण मे,
हम लहू-लहू लहरा देगे।
हम कोल-भील, हम कोल-भील,
हम रक्त-ध्वजा फहरा देगे।।

यह कहते ही उन भीलो के–
शिर पर भैरव-रणभूत चढ़ा।
उनके उर का सगर-साहस,
दूना - तिगुना - चौगुना बढ़ा।।

इतने म उनके कानो मे,
भीषण आँधी - सी हहराई।
मच गया अचल पर कोलाहल,
सेना आई, सेना आई।।

कितने पैदल कितने सवार,
कितने स्यन्दन जोडे जोड़े।
कितनी सेना, कितने नायक,
कितने हाथी कितने घोडे।।

कितने हथियार लिये सैनिक,
कितने सेनानी तोप लिये।
आते कितने झण्डे ले, ले,
कितने राणा पर कोप किये।।

कितने कर मे करवाल लिये,
कितने जन मुग्दर ढाल लिये।
कितने कण्टक-मय जाल लिये,
कितने लोहे के फाल लिये।।

कितने खजर-भाले ले ले,
कितने बरछे ताजे ले ले।
पावस-नद से उमड़े आते,
कितने मारू बाजे ले ले।।

कितने देते पैनरा वीर,
थे बने तुरग कितने समीर।
कितने भीषण-रव मे मतग,
जग को करने आते अधीर।।

देखी न, सुनी न, किसी ने भी,
टिड्डी-दल-सी इतनी सेना।
कल-कल करती, आगे बढ़ती,
आती अरि की जितनी सेना।।

अजमेर नगर से चला तुरत,
खमनौर-निकट बस गया मान।
बज उठा दमामा दम-दम-दम,
गड गया अचल पर रण-निशान।।

भीषण-रव मे रण-डका के,
थर-थर अवनी-तल थहर उठा।
गिरि-गुहा-कन्दरा का कण-कण,
घन-घोर-नाद मे घहर उठा।।

बोले चिल्लाकर कोल-भील,
तलवार उठा लो बढ आई।
मेरे शूरो, तैयार रहो,
मुगलों की सेना चढ आई।।

चमका चमका असि बिजली-सम,
रँग दो शोणित मे पर्वत-कण।
जिससे स्वतन्त्र यह रहे देश,
दिखला दो वही भयानक-रण।।

हम सब पर अधिक भरोसा है,
मेवाड़-देश के पानी का।
वीरो, निज को कुर्बान करो,
है यही समय कुर्बानी का।।

भैरव-धनु का टकार करो,
तुम शेष-सदृश फुङ्कार करो।
अपनी रक्षा के लिए उठो,
अब एक बार हुङ्कार करो॥

भीलों के कल-कल करने से,
आया अरि-सेनाधीश सुना।
बढ गया अचानक पहले से,
राणा का साहस बीस गुना॥

बोला नरसिंहो, उठ जाओ,
इस रण-बेला रमणीया में।
चाहे जिस हालत में जो हो,
जाग्रति में, स्वप्न-तुरीया में॥

जिस दिन के लिए जन्म भर से,
देते आते रण-शिक्षा हम।
वह समय आ गया करते थे,
जिसकी दिनरात प्रतीक्षा हम॥

अब सावधान, अब सावधान,
वीरो, हो जाओ सावधान।
बदला लेने आ गया मान,
कर दो उससे रण घमासान॥

सुनकर सैनिक तनतना उठे,
हाथी-हय-दल पनपना उठे।
हथियारों से भिड जाने को,
हथियार सभी झनझना उठे॥

गनगना उठे सातंक लोक,
तलवार म्यान से कढ़ते ही।
शूरों के रोएँ फड़क उठे,
रण-मन्त्र वीर के पढ़ते ही॥

अब से सैनिक राणा का,
दरबार लगा रहता था।
दरबान महीधर बनकर,
दिन-रात जगा रहता था॥

दशम सर्ग

एक सौ छप्पन पंक्ति

नाना तरु-बेलि-लता-मय,
पर्वत पर निर्जन वन था।
निशि बसती थी झुरमुट में,
वह इतना घोर सघन था॥

पत्तो से छन छन कर थी,
आती दिनकर की लेखा।
वह भूतल पर बनती थी,
पतली-सी स्वर्णिम रेखा॥

लोनी लोनी लतिका पर,
अविराम कुसुम खिलते थे।
बहता था मारुत, तरु-दल,
धीरे धीरे हिलते थे॥

नीलम पल्लव की छवि से,
थी ललित मंजरी-काया।
सोती थी तृण-शय्या पर,
कोमल रसाल की छाया॥

मधु पिला-पिला तरु-तरु को,
थी बना रही मतवाला।
मधु-स्नेह-वलित बाला-सी,
थी नव मधूक की माला॥

खिलती शिरीष की कलियाँ,
सगीत मधुर झुन-रुन-झुन।
तरु-मिस वन झूम रहा था,
खग-कुल-स्वर-लहरी सुन-सुन॥

माँ झूला झूल रही थी,
नीमो के मृदु झूलों पर।
बलिदान-गान गाते थे,
मधुकर बैठे फूलो पर॥

थी नव-दल की हरियाली,
वट-छाया मोद-भरी थी,
नव अरुण-अरुण गोदो मे,
पीपल की गोद भरी थी॥

कमनीय कुसुम खिल-खिलकर,
टहनी पर झूल रहे थे।
खग बैठे थे मन मारे,
सेमर-तरु फूल रहे थे॥

इस तरह अनेक विटप थे,
थी सुमन-सुरभि की माया।
सुकुमार-प्रकृति ने जिनकी,
थी रची मनोहर-काया॥

बादल ने उनको सीचा,
दिनकर-कर ने गरमी दी।
धीरे-धीरे सुहलाकर,
मारुत ने जीवन-श्री दी॥

मीठे मीठे फल खाते,
शाखामृग शाखा पर थे।
शक देख-देख होता था,
वे बानर थे वा नर थे॥

फल कुतुर-कुतुर खाती थी,
तरु पर बैठी गिलहरियाँ।
पंचम-स्वर मे गा उठती,
रह-रहकर वन की परियाँ॥

चह-चह-चह, फुदक-फुदक कर,
डाली से उस डाली पर।
गाते थे पक्षी होकर,
न्योछावर वनमाली पर॥

चरकर पगुराती माँ को,
दे सीग ढकेल रहे थे।
कोमल-कोमल घासो पर,
मृग-छौने खेल रहे थे॥

अधखुले नयन हरिणी के,
मृदु-काय हरिण खुजलाते।
झाडी मे उलझ उलझ कर,
बारहसिघे झुझलाते॥

वन-धेनु-दूध पीते थे,
लैरू दुम हिला हिला कर।
माँ उनको चाट रही थी,
तन से तन मिला मिलाकर॥

चीते नन्हें शिशु ले ले,
चलते मन्थर चालो से।
क्रीड़ा करते थे नाहर,
अपने लघु-लघु बालों से॥

झरनों का पानी लेकर,
गज छिड़क रहे मतवाले।
मानो जल बरस रहे हों,
सावन-घन काले-काले॥

भैंसे भू खोद रहे थे,
आ, नहा-नहा नालों से।
थे केलि भील भी करते,
भालों से, करवालों से।।

नव हरी-हरी दूबो पर,
बैठा था भीलों का दल।
निर्मल समीप ही निर्झर,
बहता था, कल-कल, छल-छल।।

ले सहचर मान शिविर से,
निर्झर के तीरे-तीरे।
अनिमेष देखता आया,
वन की छवि धीरे-धीरे।।

उसने भीलो को देखा,
उसको देखा भीलों ने।
तन मे बिजली-सी दौडी,
बन लगा भयावह होने।।

शोणित-मय कर देने को,
वन-वीथी बलिदानो से।
भीलों ने भाले ताने,
असि निकल पड़ी म्यानों से।।

जय जय केसरिया बाबा,
जय एकलिङ्ग की बोले।
जय महादेव की ध्वनि से,
पर्वत के कण-कण डोले।।

ललकार मान को घेरा,
हथकड़ी पिन्हा देने को।
तरकस से तीर निकाले,
अरि से लोहा लेने को।।

वैरी को मिट जाने मे,
अब थी क्षण भर की देरी।
तब तक बज उठी अचानक,
राणा प्रताप की भेरी।।

वह अपनी लघु-सेना ले,
मस्ती से घूम रहा था।
रण-भेरी बजा-बजाकर,
दीवाना झूम रहा था।।

लेकर केसरिया झण्डा,
वह वीर-गान था गाता।
पीछे सेना दुहराती,
सारा वन था हहराता।।

गाकर जब आँखें फेरीं,
देखा अरि को बन्धन में।
विस्मय-चिन्ता की ज्वाला,
भभकी राणा के मन में।।

लज्जा का बोझा शिर पर
नत मस्तक अभिमानी था।
राणा को देख अचानक,
वैरी पानी-पानी था।।

दौड़ा अपने हाथों से,
जाकर अरि-बन्धन खोला।
वह वीर-व्रती नर-नाहर,
विस्मित भीलों से बोला।।

"मेवाड़-देश के भीलो,
यह मानव-धर्म नही है।
जननी-सपूत, रण-कोविद,
योधा का कर्म नहीं है।।

अरि को भी धोका देना,
शूरो की रीति नही है।
छल से उनको वश करना,
यह मेरी नीति नही है।।

अब से भी झुक झुक कर तुम,
सत्कार समेत बिदा दो।
कर क्षमा-याचना इनको,
गल-हार-समेत बिदा दो।।"

आदेश मान भीलो ने,
सादर की मान-बिदाई।
ले चला घटा पीडा की,
जो थी उर-नभ पर छाई।।

भीलों से बाने करता,
सेना का व्यूह बनाकर।
राणा भी चला शिविर को,
अपना गौरव दिखलाकर।।

था मान सोचना, दुख देना,
भीलो का अत्याचार मुझे।
अब कल तक चमकानी होगी,
वह बिजली-सी तलवार मुझे।।

है त्रपा-भार से दबा रहा,
राणा का मृदु-व्यवहार मुझे।
कल भेरी भयद बजेगी ही,
रण-विजय मिले या हार मुझे।।

एकादश सर्ग

दो सौ अस्सी पंक्ति

जग मे जाग्रति पैदा कर दूँ,
वह मन्त्र नही, वह तन्त्र नही।
कैसे वांछित कविता कर दूँ,
मेरी यह कलम स्वतन्त्र नही ।।

अपने उर की इच्छा भर दूँ,
ऐसा है कोई यन्त्र नही।
हलचल-सी मच जाये पर--
यह लिखना हूँ रण षडयन्त्र नही ।।

ब्राह्मण है तो आँसू भर ले,
क्षत्रिय है नत मस्तक कर ले,
है वैश्य शुद्र तो बारबार,
अपनी सेवा पर शक कर ले ।।

दुख देह पुलक कम्पन होता,
हा, विषय गहन यह नभ-सा है।
यह हृदय-विदारक वही समर,
जिसका लिखना दुर्लभ-सा है ।।

फिर भी पीडा मे भरी कलम,
लिखनी प्राचीन कहानी है।
लिखती हल्दीघाटी रण की,
वह अजर-अमर कुर्बानी है।

सावन का हरित प्रभात रहा,
अम्बर पर थी घनघोर घटा।
फहराकर पंख थिरकते थे,
मन हरती थी वन-मोर-छटा।।

पड रही फुही झीसी झिन-झिन,
पर्वत की हरी वनाली पर।
'पी कहाँ' पपीहा बोल रहा.
तरु-तरु की डाली-डाली पर।।

वारिद के उर मे चमक दमक,
तड़ तड़ बिजली थी तडक रही।
रह रह कर जल था बरस रहा.
रणधीर-भुजा थी फडक रही।।

था मेघ बरसता झिमिर झिमिर,
तटिनी की भरी जवानी थी।
वह चली तरगो की असि ले,
चण्डी-सी वह मस्तानी थी।।

वह घटा चाहती थी जल से,
सरिता-सागर-निर्झर भरना।
यह घटा चाहती शोणित से,
पर्वत का कण-कण तर करना।।

धरती की प्यास बुझाने को,
वह घहर रही थी घन-सेना।
लोहू पीने के लिए खडी–
यह हहर रही थी जन-सेना।।

नभ पर चम चम चपला चमकी,
चम चम चमकी तलवार इधर,
भैरव अमन्द घन-नाद उधर,
दोनों दल की ललकार इधर।।

वह कड़-कड़-कड़-कड़ कड़क उठी,
यह भीम-नाद से तड़क उठी।
भीषण-संगर की आग प्रबल,
वैरी-सेना मे भड़क उठी॥

डग-डग डग-डग रण के डके,
मारू के साथ भयद बाजे।
टप-टप-टप घोडे कूद पडे,
कट-कट मतंग के रद बाजे॥

कलकल कर उठी मुगल-सेना,
किलकार उठी, ललकार उठी।
असि म्यान-विवर से निकल तुरत,
अहि-नागिन-सी फुफकार उठी॥

शर-दण्ड चले, कोदण्ड चले,
कर की कटारियाँ तरज उठी।
खूनी बरछे-भाले चमके,
पर्वत पर तोपे गरज उठी॥

फर-फर-फर-फर-फर फहर उठा,
अकबर का अभिमानी निशान।
बढ चला कटक लेकर अपार,
मद-मस्त द्विरद पर मस्त मान॥

कोलाहल पर कोलाहल सुन,
शस्त्रो की सुन झनकार प्रबल।
मेवाड़-केसरी गरज उठा,
सुनकर अरि की ललकार प्रबल॥

हर एकलिग को माथ नवा,
लोहा लेने चल पडा वीर।
चेतक का चचल वेग देख,
था महा-महा लज्जित समीर॥

लड़लड़ कर अखिल मही तल को,
शोणित से भर देने वाली।
तलवार वीर की तड़प उठी,
अरि-कण्ठ कतर देने वाली।।

राणा का ओज भरा आनन,
सूरज-समान चमचमा उठा।
बन महाकाल का महाकाल,
भीषण भाला दमदमा उठा।

भेरी प्रताप की बजी तुरत,
बज चले दमामे धमर-धमर।
घम-घम रण के बाजे बाजे,
बज चले नगारे घमर-घमर।।

जय रुद्र बोलते रुद्र-सदृश,
खेमों से निकले राजपूत।
झट झण्डे के नीचे आकर,
जय प्रलयकर बोले सपूत।।

अपने पैने हथियार लिये,
पैनी पैनी तलवार लिये।
आये खर-कुन्त-कटार लिये,
जननी-सेवा का भार लिये।।

कुछ घोडे पर कुछ हाथी पर,
कुछ योधा पैदल ही आये।
कुछ ले बरछे कुछ ले भाले,
कुछ शर से तरकस भर लाये।।

रण-यात्रा करते ही बोले,
राणा की जय, राणा की जय।
मेवाड़-सिपाही बोल उठे,
शत बार महाराणा की जय।।

हल्दीघाटी के रण की जय,
राणा प्रताप के प्रण की जय।
जय जय भारत माता की जय,
मेवाड़-देश-कण-कण की जय॥

हर एकलिङ्ग, हर एकलिङ्ग,
बोला हर-हर अम्बर अनन्त।
हिल गया अचल, भर गया तुरत,
हर-हर निनाद से दिगदिगन्त॥

घनघोर घटा के बीच चमक,
तड़ तड़ नभ पर तड़िता तड़की।
झन-झन असि की झनकार इधर,
कायर-दल की छाती धड़की॥

अब देर न थी वैरी-वन मे,
दावानल के सम छूट पडे।
इस तरह वीर झपटे उन पर,
मानो हरि मृग पर टूट पड़े॥

मरने कटने की बान रही,
पुश्तैनी इसमे आह न की।
प्राणों की रंचक चाह न की,
तोपों की भी परवाह न की॥

रण-मत्त लगे बढ़ने आगे,
शिर काट-काट करवालों से।
संगर की मही लगी पटने,
क्षण-क्षण अरि-कण्ठ-कपालों से॥

हाथी-सवार, हाथी पर थे,
बाजी-सवार, बाजी पर थे।
पर उनके शोणित-मय मस्तक,
अवनी-पर मृत-राजी पर थे॥

कर की असि ने आगे बढकर,
संगर-मतंग-शिर काट दिया॥
बाजी वक्षःस्थल गोभ-गोभ,
बरछी ने भूतल पाट दिया॥

गज गिरा, मरा पिलवान गिरा,
हय कट कर गिरा, निशान गिरा।
कोई लड़ता उत्तान गिरा,
कोई लड़कर बलवान गिरा॥

झटके मे शूल गिरा भू पर,
बोला भट मेरा शूल कहाँ।
शोणित का नाला वह निकला,
अवनी-अम्बर पर धूल कहाँ॥

आँखों मे भाला भोक दिया,
लिपटे अन्धे जन अन्धो से।
शिर कट कर भू पर लोट गये,
लड गये कबन्ध कबन्धो से॥

अरि-कुन्त घुसा झट उसे दबा,
अपने सीने के पार किया।
इस तरह निकट वैरी-उर को,
कर-कर कटार से फार दिया॥

कोई खरतर करवाल उठा,
सेना पर बरसा आग गया।
गिर गया शीश कटकर भू पर,
घोड़ा धड़ लेकर भाग गया॥

कोई करता था रक्त-वमन,
छिद गया किसी मानव का तन।
कट गया किसी का एक बाहु,
कोई था सायक-विद्ध नयन॥

गिर पड़ा पीन गज, फटी धरा,
खर रक्त-वेग से कटी धरा।
चोटी-दाढ़ी से पटी धरा,
रण करने को भी घटी धरा॥

तो भी रख प्राण हथेली पर,
वैरी-दल पर चढ़ते ही थे।
मरते कटते मिटते भी थे,
पर राजपूत बढ़ते ही थे॥

राणा प्रताप का ताप तचा,
अरि-दल मे हाहाकार मचा।
भेड़ो की तरह भगे कहते,
अल्लाह हमारी जान बचा॥

अपनी नगी तलवारो से,
वे आग रहे है उगल कहाँ।
वे कहाँ शेर की तरह लड़े,
हम दीन सिपाही मुगल कहाँ॥

भयभीत परस्पर कहते थे,
साहस के साथ भगो वीरो!
पीछे न फिरो, न मुड़ो, न कभी,
अकबर के हाथ लगो वीरो!।

यह कहते मुगल भगे जाते,
भीलों के तीर लगे जाते।
उठते जाते, गिरते जाते,
बल खाते, रक्त पगे जाते॥

आगे थी अगम बनास नदी,
वर्षा से उसकी प्रखर धार।
थी बुला रही उनको शतशत,
लहरों के कर से बार बार॥

पहले सरिता को देख डरे,
फिर कूद कूद उस पार भगे।
कितने बह बह इस पार लगे,
कितने बह कर उस पार लगे॥

मँझधार तैरते थे कितने,
कितने जल पी-पी ऊब मरे।
लहरों के कोड़े खा-खाकर,
कितने पानी में डूब मरे॥

राणा-दल की ललकार देख,
अपनी सेना की हार देख।
सातंक चकित रह गया मान,
राणा प्रताप के वार देख॥

व्याकुल होकर वह बोल उठा,
"लौटो लौटो न भगो भागो।
मेवाड़ उड़ा दो तोप लगा,
ठहरो ठहरो फिर से जागो॥

देखो आगे बढ़ता हूँ मैं,
वैरी-दल पर चढ़ता हूँ मैं।
ले लो करवाल बढ़ो आगे,
अब विजय-मन्त्र पढ़ता हूँ मैं"॥

भगती सेना को रोक तुरत,
लगवा दी भैरव-काय तोप।
उस राजपूत-कुल घातक ने,
हा, महाप्रलय-सा दिया रोप॥

फिर लगी बरसने आग सतत,
उन भीम भयंकर तोपों से।
जल-जलकर राख लगे होने,
योधा उन मुगल-प्रकोपों से॥

भर रक्त-तलैया चली उधर,
सेना-उर में भर शोक चला।
जननी-पद शोणित से धो-धो,
हर राजपूत हर-लोक चला॥

क्षणभर के लिए विजय दे दी,
अकबर के दारुण दूतों को।
माता ने अचल बिछा दिया,
सोने के लिए सपूतों को॥

विकराल गरजती तोपों से,
रूई-सी क्षण क्षण धुनी गई।
उस महायज्ञ में आहुति-सी,
राणा की सेना हुनी गई॥

बच गये शेष जो राजपूत,
संगर से बदल बदल कर रुख।
निरुपाय दीन कातर होकर,
वे लगे देखने राणा-मुख॥

राणा-दल का यह प्रलय देख,
भीषण भाला दमदमा उठा।
जल उठा वीर का रोम-रोम,
लोहित आनन तमतमा उठा॥

वह क्रोध-वह्नि से जल भुनकर,
काली-कटाक्ष-सा ले कृपाण।
घायल नाहर-सा गरज उठा,
क्षण-क्षण बिखेरता प्रखर बाण॥

बोला "आगे बढ़ चलो शेर,
मत क्षण भर भी अब करो देर।
क्या देख रहे हो मेरा मुख,
तोपों के मुह दो अभी फेर"॥

बढ़ चलने का सन्देश मिला,
मर मिटने का उपदेश मिला।
"दो फेर तोप-मुख" राणा से,
उन सिहों को आदेश मिला।।

गिरते जाते, बढ़ते जाते,
मरते जाते चढ़ते जाते,
मिटते जाते, कढ़ते जाते,
गिरते-मरते-मिटते जाते।।

बन गये वीर मतवाले थे,
आगे वे बढ़ते चले गये।
राणा प्रताप की जय करते,
तोपो तक चढ़ते चले गये।।

उन आग बरसती तोपो के,
मुह फेर अचानक टूट पड़े।
वैरी-सेना पर तड़प-तडप—
मानो शत-शत पवि छूट पड़े।।

फिर महासमर छिड़ गया तुरत,
लोहू-लोहित हथियारो से।
फिर होने लगे प्रहार वार,
बरछे-भाले-तलवारो से।।

शोणित से लथपथ ढालों से,
कर के कुन्तल करवालों से।
खर-छुरी-कटारी फालों से,
भू भरी भयानक भालों से।।

गिरि की उन्नत चोटी से,
पाषाण भील बरसाते।
अरि-दल के प्राण-पखेरू,
तन-पिंजर से उड़ जाते।।

कोदण्ड - चण्ड - रव करते,
वैरी निहारते चोटी।
तब तक चोटी वालों ने,
बिखरा दी बोटी-बोटी।।

अब इसी समर में चेतक,
मारुत बन कर आयेगा।
राणा भी अपनी असि का,
अब जौहर दिखलायेगा।।

द्वादश सर्ग

तीन सौ बारह पंक्ति

[चित्रकार श्री टी० के० मित्र के सौजन्य से]

हल्दीघाटी का महासमर

निर्बल बकरों से बाघ लड़े,
भिड़ गये सिंह मृग-छौनों से।
घोड़े गिर पडे गिरे हाथी,
पैदल बिछ गये बिछौनो-से॥

हाथी मे हाथी जूझ पड़े,
भिड़ गये सवार सवारों मे।
घोड़ों पर घोड़े टूट पड़े,
तलवार लडी तलवारों से॥

हय-रुण्ड गिरे, गज-मुण्ड गिरे,
कट-कट अवनी पर शुण्ड गिरे।
लड़ते लड़ते अरि-झुण्ड गिरे,
भू पर हय विकल वितुण्ड गिरे॥

क्षण महाप्रलय की बिजली-सी,
तलवार हाथ की तडप-तडप।
हय-गज-रथ-पैदल भगा भगा,
लेती थी वैरी वीर हड़प॥

क्षण लाद फट गया घोड़े का,
हो गया पतन कर-कोड़े का।
भू पर सातक सवार गिरा,
क्षण पता न था हय-जोड़े का॥

चिंग्घाड़ भगा भय से हाथी,
लेकर अंकुश पिलवान गिरा।
झटका लग गया, फटी झालर,
हौदा गिर गया, निशान गिरा॥

कोई नत-मुख बेजान गिरा,
करवट कोई उत्तान गिरा।
रण-बीच अमित भीषणता से,
लड़ते-लड़ते बलवान गिरा॥

होती थी भीषण मार-काट,
अतिशय रण से छाया था भय।
था हार-जीत का पता नहीं,
क्षण इधर विजय क्षण उधर विजय।

कोई व्याकुल भर आह रहा,
कोई था विकल कराह रहा।
लोहू से लथपथ लोथों पर,
कोई चिल्ला अल्लाह रहा॥

धड़ कहीं पड़ा सिर कहीं पड़ा,
कुछ भी उनकी पहचान नहीं।
शोणित का ऐसा वेग बढ़ा,
मुरदे बह गये निशान नहीं॥

मेवाड़-केशरी देख रहा,
केवल रण का न तमाशा था।
वह दौड़ दौड़ करता था रण,
वह मान-रक्त का प्यासा था॥

चढ़कर चेतक पर घूम-घूम,
करता सेना रखवाली था।
ले महामृत्यु को साथ-साथ,
मानो प्रत्यक्ष कपाली था॥

रण-बीच चौकड़ी भर भर कर,
चेतक बन गया निराला था।
राणा प्रताप के घोड़े से,
पड़ गया हवा को पाला था॥

गिरता न कभी चेतक तन पर,
राणा प्रताप का कोड़ा था।
वह दौड़ रहा अरि-मस्तक पर,
या आसमान पर घोड़ा था॥

जो तनिक हवा से बाग हिली,
लेकर सवार उड़ जाता था।
राणा की पुतली फिरी नही,
तब तक चेतक मुड जाता था॥

कौशल दिखलाया चालों में,
उड़ गया भयानक भालो मे।
निर्भीक गया वह ढालो मे,
सरपट दौड़ा करवालो मे॥

है यही रहा, अब यहाँ नही,
वह वही रहा है वहाँ नही।
थी जगह न कोई जहाँ नही,
किस अरि-मस्तक पर कहाँ नही॥

बढ़ते नद-सा वह लहर गया,
वह गया गया फिर ठहर गया।
विकराल वज्र-मय बादल-सा,
अरि की सेना पर घहर गया॥

भाला गिर गया गिरा निषंग,
हय-टापों से खन गया अंग।
वैरी-समाज रह गया दंग,
घोड़े का ऐसा देख रंग॥

चढ़ चेतक पर तलवार उठा,
रखता था भूतल-पानी को।
राणा प्रताप शिर काट-काट,
करता था सफल जवानी को ।।

कलकल बहती थी रण-गगा,
अरि-दल को डूब नहाने को।
लतवार वीर की नाव बनी,
चटपट उस पार लगाने को ।।

वैरी-दल को ललकार गिरी,
वह नागिन-सी फुफकार गिरी।
था शोर मौत से बचो, बचो,
तलवार गिरी, तलवार गिरी ।।

पैदल से हय-दल, गज-दल में,
छप छप करती वह विकल गई।
क्षण कहाँ गई कुछ पता न फिर,
देखो चम चम वह निकल गई ।।

क्षण इधर गई क्षण उधर गई,
क्षण चढ़ी बाढ़-सी उतर गई।
था प्रलय, चमकती जिधर गई,
क्षण शोर हो गया किधर गई ।।

क्या अजब विषैली नागिन थी,
जिसके डसने मे लहर नही।
उतरी तन से मिट गये वीर,
फैला शरीर मे जहर नही ।।

थी छुरी कहीं तलवार कही,
वह बरछी-असि खरधार कही।
वह आग कहीं अंगार कहीं,
बिजली थी कही कटार कही ।।

लहराती थी शिर काट-काट,
बल खाती थी भू पाट-पाट।
बिखराती अवयव बाट-बाट,
तनती थी लोहू चाट-चाट ॥

सेना-नायक राणा के भी,
रण देख देख कर चाह भरे।
मेवाड़-सिपाही लड़ते थे,
दूने तिगुने उत्साह भरे ॥

क्षण मार दिया कर-कोडे से,
रण किया उतर कर घोडे से।
राणा रण-कौशल दिखा दिखा,
चढ गया उतर कर घोड़े से ॥

क्षण भीषण हलचल मचा मचा,
राणा-कर की तलवार बढी।
था शोर रक्त पीने को यह,
रण-चण्डी जीभ पसार बढी ॥

वह हाथी-दल पर टूट पड़ा,
मानो उस पर पवि छूट पड़ा।
कट गई वेग से भू, ऐसा,
शोणित का नाला फूट पड़ा ॥

जो साहस कर बढ़ता उसको,
केवल कटाक्ष से टोक दिया।
जो वीर बना नभ-बीच फेंक,
बरछी पर उसको रोक दिया ॥

क्षण उछल गया अरि घोड़े पर,
क्षण लडा सो गया घोड़े पर,
वैरी-दल से लड़ते-लड़ते,
क्षण खड़ा हो गया घोड़े पर ॥

क्षण भर में गिरते रुण्डों से,
मदमस्त गजों के शुण्डो से।
घोड़ों से विकल वितुण्डों से,
पट गई भूमि नर-मुण्डो से।।

ऐसा रण राणा करता था,
पर उसको था सतोष नही।
क्षण-क्षण आगे बढता था वह,
पर कम होता था रोष नही।।

कहता था लडता मान कहाँ,
मै कर लूँ रक्त-स्नान कहाँ।
जिस पर तय विजय हमारी है,
वह मुगलो का अभिमान कहाँ।।

भाला कहता था मान कहाँ,
घोड़ा कहता था मान कहाँ?
राणा की लोहित आँखो से,
रव निकल रहा था मान कहाँ।।

लड़ता अकबर सुल्तान कहाँ,
वह कुल-कलंक है मान कहाँ?
राणा कहता था बार-बार,
मै करूँ शत्रु-बलिदान कहाँ।।

तब तक प्रताप ने देख लिया,
लड़ रहा मान था हाथी पर।
अकबर का चंचल साभिमान,
उड़ता निशान था हाथी पर।।

वह विजय-मन्त्र था पढ़ा रहा,
अपने दल को था बढ़ा रहा।
वह भीषण-समर भवानी को,
पग पग पर बलि था चढ़ा रहा।।

फिर रक्त देह का उबल उठा,
जल उठा क्रोध की ज्वाला से।
घोड़ा से कहा बढ़ो आगे,
बढ़ चलो कहा निज भाला से॥

हय-नस-नस में बिजली दौड़ी,
राणा का घोड़ा लहर उठा।
शत-शत बिजली की आग लिये,
वह प्रलय-मेघ-सा घहर उठा॥

क्षय अमिट रोग वह राजरोग,
ज्वर सन्निपात लकवा था वह।
था शोर बचो घोड़ा-रण से,
कहता हय कौन, हवा था वह॥

तनकर भाला भी बोल उठा,
राणा मुझको विश्राम न दे।
वैरी का मुझसे हृदय गोभ,
तू मुझे तनिक आराम न दे॥

खाकर अरि-मस्तक जीने दे,
वैरी-उर-माला सीने दे।
मुझको शोणित की प्यास लगी,
बढ़ने दे, शोणित पीने दे॥

मुरदों का ढेर लगा दूँ मैं,
अरि-सिंहासन थहरा दूँ मैं।
राणा मुझको आज्ञा दे दे,
शोणित-सागर लहरा दूँ मैं॥

रचक राणा ने देर न की,
घोड़ा बढ़ आया हाथी पर।
वैरी-दल का शिर काट-काट,
राणा चढ़ आया हाथी पर॥

वह महा प्रतापी घोड़ा उड़,
जंगी हाथी को हबक उठा।
भीषण-विप्लव का दृश्य देख,
भय से अकबर-दल दबक उठा।।

क्षण भर छल बल कर लड़ा अडा,
दो पैरों पर हो गया खड़ा।
फिर अगले दोनों पैरों को,
हाथी-मस्तक पर दिया गड़ा।।

यह देख मान ने भाला से,
करने की की क्षण चाह समर।
इस तरह थाम कर झटक दिया,
हाथी की भी झुक गई कमर।।

राणा के भीषण झटके से,
हाथी का मस्तक फूट गया।
अम्बर कलंक उस कायर का,
भाला भी दबकर टूट गया।।

राणा वैरी से बोल उठा,
"देखा न समर भाला से कर।
लड़ना तुझको है अगर अभी,
तो फिर लड़ ले भाला लेकर"।।

हाँ, हाँ, लड़ना है कहकर जब,
वैरी ने उठा लिया भाला।
क्षण भौंह चढ़ाकर देख दिया,
काँपे जो हाथ गिरा भाला।।

राणा ने हँसकर कहा "मान,
अब बस कर दे हो गया युद्ध।
वैरी पर वार न करने से,
मेरा भाला हो रहा क्रुद्ध।।

अपने शरीर की रक्षा कर,
भग जा भग जा अब जान बचा"।
यह कहकर भाला उठा लिया,
भीषणतम हाहाकार मचा।।

क्षण देर न की तनकर मारा,
अरि कहने लगा न भाला है।
यह गोहुवन करइत काला है,
या महाकाल मतवाला है।।

यह चली धधकती ज्वाला है,
शत-शत भुजंग की हाला है।
यह निकल रही भाला की भा,
या प्रलय-वह्नि की माला है।।

छिप गया मान हौदे-तल मे,
टकरा कर हौदा टूट गया।
भाला की हलकी हवा लगी,
पिलवान गिरा तन छूट गया।।

अब बिना महावत के हाथी,
चिग्घाड़ भगा राणा-भय से।
संयोग रहा बच गया मान,
खूनी भाला राणा-हय से।।

सागर-तरंग की तरह इधर,
वैरी राणा पर टूट पड़े।
तलवार गिरी शत एक साथ,
शत बरछे उन पर छूट पड़े।।

राणा के चारों ओर मुगल,
होकर करने आघात लगे।
खा खाकर अरि तलवार चोट,
क्षण-क्षण होने भू-पात लगे।।

दानव-समाज में अरुण पड़ा,
जल-जन्तु-बीच हो वरुण पड़ा।
इस तरह भभकता राणा था,
मानो सर्पों में गरुड़ पड़ा ।।

हय रुण्ड कतर गज-मुण्ड पाछ,
अरि-व्यूह-गले पर फिरती थी—
तलवार वीर की तड़प-तड़प,
क्षण-क्षण बिजली-सी गिरती थी ।।

करवाल उठाकर राणा ने,
वैरी का मस्तक काट लिया।
ताण्डव करते लड़ते-लड़ते,
भाला ने लोहू चाट लिया ।।

राणा-कर ने, शिर काट-काट,
दे दिये कपाल, कपाली को ।
शोणित की मदिरा पिला पिला,
कर दिया तुष्ट रण-काली को ।।

पर दिनभर लड़ने से तन से,
चल रहा पसीना था तर-तर।
अविरल शोणित की धारा थी,
राणा-क्षत से बहती झर-झर ।।

घोड़ा भी उसका शिथिल बना,
था उसको चैन न घावों से ।
वह अधिक अधिक लड़ता यद्यपि,
दुर्लभ था चलना पाँवों से ।।

तब तक झाला ने देख लिया,
राणा प्रताप है संकट में।
बोला न बाल बाँका होगा,
जब तक है प्राण बचा घट में ।।

अपनी तलवार दुधारी ले,
भूखा नाहर-सा टूट पड़ा।
कलकल मच गया अचानक दल,
आश्विन के घन-सा फूट पड़ा॥

राणा की जय, राणा की जय,
वह आगे बढ़ता चला गया।
राणा प्रताप की जय करता,
राणा तक चढ़ता चला गया॥

रख लिया छत्र अपने शिर पर,
राणा-प्रताप-मस्तक से ले।
ले स्वर्ण-पताका झूझ पड़ा,
रण-भीम-कला अन्तक से ले॥

झाला को राणा जान मुगल,
फिर टूट पड़े वे झाला पर।
मिट गया वीर जैसे मिटता,
परवाना दीपक-ज्वाला पर॥

झाला ने राणा-रक्षा की,
रख दिया देश के पानी को,
छोड़ा राणा के साथ-साथ,
अपनी भी अमर कहानी को॥

अरि विजय गर्व से फूल उठे,
इस तरह हो गया समर-अन्त।
पर किसकी विजय रही बतला,
ऐ सत्य सत्य अम्बर अनन्त॥

पश्चिम की ओर गगन पर,
छाई सन्ध्या की लाली।
बिछ गई सुनहली चादर,
पीली पड़ गई वनाली॥

गिरि की चोटी पर चढ़कर,
किरणें निहारती लाशे,
जिनमें कुछ तो मुरदे थे,
कुछ की चलती थी साँसे ।।

वे देख-देख कर उनको,
मुरझाती जातीं पल-पल।
होता था स्वर्णिम नभ पर,
पक्षी-क्रन्दन का कल-कल ।।

मुख छिपा लिया सूरज ने,
जब रोक न सका रुलाई।
सावन की अन्धी रजनी,
वारिद-मिस रोती आई ।।

त्रयोदश सर्ग

एक सौ छिहत्तर पंक्ति

जो कुछ बचे सिपाही शेष,
हट जाने का दे आदेश।
अपने भी हट गया नरेश,
वह मेवाड़-गगन-राकेश॥

बनकर महा काल का काल,
जूझ पड़ा अरि से तत्काल।
उसके हाथो में विकराल,
मरते दम तक थी करवाल॥

उस पर तन-मन-धन बलिहार,
झाला धन्य, धन्य परिवार।
राणा ने कह कह शत-बार,
कुल को दिया अमर अधिकार॥

हाय ग्वालियर का शिरताज,
सेनप रामसिंह अधिराज।
उसका जगमग जगमग ताज,
शोणित-रज लुण्ठित है आज॥

राजे - महराजे - सरदार,
जो मिट गये लिये तलवार।
उनके तर्पण में अविकार,
आँखों से आँसू की धार।

बढ़ता जाता विकल अपार,
घोड़ा पर हो व्यथित सवार।
सोच रहा था बारंबार,
कैसे हो माँ का उद्धार॥

मैंने किया मुगल-बलिदान,
लोहू से लोहित मैदान।
बच कर निकल गया पर मान,
पूरा हो न सका अरमान॥

कैसे बचे देश-सम्मान,
कैसे बचा रहे अभिमान।
कैसे हो भू का उत्थान,
मेरे एकलिङ्ग भगवान॥

स्वतन्त्रता का झण्डा तान,
कब गरजेगा राजस्थान?
उधर उड़ रहा था वह वाजि,
स्वामी-रक्षा का कर ध्यान॥

उसको नद-नाले-चट्टान,
सकते रोक न वन-वीरान।
राणा को लेकर अविराम,
उसको बढ़ने का था ध्यान॥

पड़ी अचानक नदी अपार,
घोड़ा कैसे उतरे पार।
राणा ने सोचा इस पार,
तब तक चेतक था उस पार॥

शक्तसिंह भी ले तलवार,
करने आया था संहार।
पर उमड़ा राणा को देख,
भाई-भाई का मधु प्यार॥

चेतक के पीछे दो काल,
पड़े हुए थे ले असि-ढाल।
उसने पथ में उनको मार,
की अपनी पावन करवाल॥

आगे बढ़कर भुजा पसार,
बोला आँखों से जल ढार।
रुक जा, रुक जा, ऐ तलवार,
'नीला - घोड़ारा - असवार॥'

पीछे से सुन तार पुकार,
फिर कर देखा एक सवार।
हय से उतर पड़ा तत्काल,
लेकर हाथों में तलवार॥

राणा उसको वैरी जान,
काल बन गया कुन्तल तान।
बोला "कर ले शोणित पान,
आ, तुझको भी दे बलिदान"॥

पर देखा झर-झर अविकार,
बहती है आँसू की धार।
गर्दन में लटकी तलवार,
घोड़े पर है शक्त सवार॥

उतर वही घोड़े को छोड़,
चला शक्त कम्पित कर जोड़।
पैरों पर गिर पड़ा विनीत,
बोला धीरज-बन्धन तोड़॥

"करुणा कर तू करुणागार,
दे मेरे अपराध बिसार।
या मेरा दे गला उतार,
तेरे सम्मुख है तलवार"॥

यह कह कह कर बारंबार,
सिसकी भरने लगा अपार।
राणा भी भूला संसार,
उमडा उर में बन्धु-दुलार॥

उसे उठाकर लेकर गोद,
गले लगाया सजल-समोद।
मिलता था जो रज मे प्रेम,
किया उसे सुरभित-सामोद॥

लेकर वन्य-कुसुम की धूल,
वही हवा मन्थर अनुकूल।
दोनों के शिर पर अविराम,
पेड़ों ने बरसाये फूल॥

कल-कल छल-छल भर स्वर-तान,
कहकर कुल-गौरव-अभिमान।
नाले ने गाया स-तरंग,
उनके निर्मल-यश का गान॥

तब तक चेतक कर चीत्कार,
गिरा धरा पर देह बिसार।
लगा लोटने बारंबार,
बहने लगी रक्त की धार॥

बरछे-असि भाले गम्भीर,
तन में लगे हुए थे तीर।
जर्जर उसका सकल शरीर,
चेतक था व्रण-व्यथित अधीर॥

करता घावों पर दृग-कोर,
कभी मचाता दुख से शोर।
कभी देख राणा की ओर,
रो देता, हो प्रेम-विभोर॥

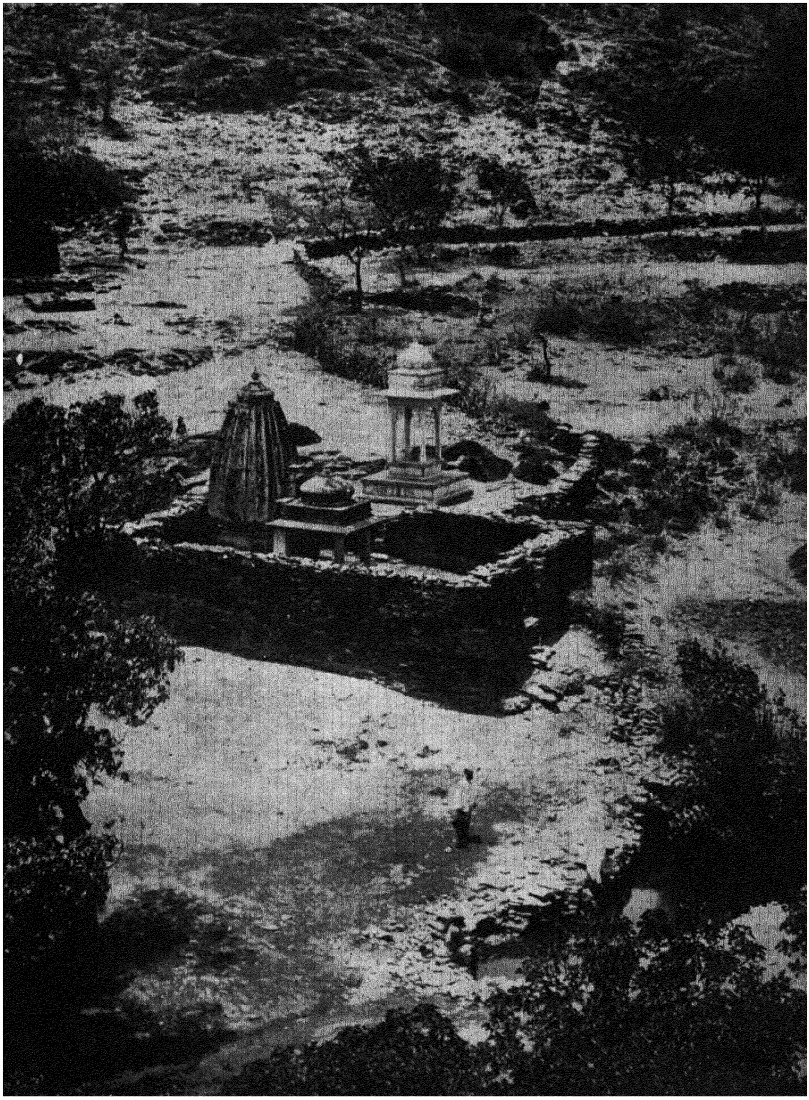

चतक-चबूतरा

लोट लोट सह व्यथा महान,
यश का फहरा अमर-निशान।
राणा-गोदी में रख शीश,
चेतक ने कर दिया पयान॥

घहरी दुख की घटा-नवीन,
राणा बना विकल-बल-हीन।
लगा तलफने बारंबार,
जैसे जल-वियोग से मीन॥

"हा! चेतक, तू पलके खोल,
कुछ तो उठकर मुझसे बोल।
मुझको तू न बना निरुपाय,
मत बन मुझसे निठुर अबोल॥

मिला बन्धु जो खोकर काल,
तो तेरा चेतक, यह हाल!
हा चेतक, हा चेतक, हाय",
कहकर चिपक गया तत्काल॥

"अभी न तू मुझसे मुख मोड़,
तू न इस तरह नाता तोड़।
इस भव-सागर-बीच अपार,
दुख सहने के लिए न छोड़॥

वैरी को देना परिताप,
गज-मस्तक पर तेरी टाप।
फिर यह तेरी निद्रा देख,
विष-सम चढ़ता है सताप॥

हाय, पतन में तेरा पात,
क्षत पर कठिन लवण-आघात।
हा, उठ जा, तू मेरे बन्धु,
पल-पल बढ़ती आती रात॥

चला गया गज रामप्रसाद,
तू भी चला बना आजाद।
हा, मेरा अब राजस्थान,
दिन पर दिन होगा बरबाद॥

किस पर देश करे अभिमान,
किस पर छाती हो उत्तान।
भाला मौन, मौन असि म्यान,
इस पर कुछ तो कर तू ध्यान॥

लेकर क्या होगा अब राज,
क्या मेरे जीवन का काज?"
पाठक, तू भी रो दे आज,
रोता है भारत-सिरताज॥

तड़प तड़प अपने नभ-गेह,
आँसू बहा रहा था मेह।
देख महाराणा का हाल,
बिजली व्याकुल, कम्पित देह॥

घुल-घुल, पिघल-पिघल कर प्राण,
आँसू बन बन कर पाषाण।
निर्झर-मिस बहता था हाय,
हा, पर्वत भी था म्रियमाण।

क्षण भर ही तक था अज्ञान,
चमक उठा फिर उर में ज्ञान।
दिया शक्त ने अपना वाजि,
चढ़कर आगे बढ़ा महान॥

जहाँ गड़ा चेतक-ककाल,
हुई जहाँ की भूमि निहाल।
वहीं देव-मन्दिर के पास,
चबूतरा बन गया विशाल॥

होता धन-यौवन का ह्रास,
पर है यश का अमर-विहास।
राणा रहा न, वाजि-विलास,
पर उनसे उज्ज्वल इतिहास॥

बनकर राणा सदृश महान,
सीखे हम होना कुर्बान।
चेतक - सम ले वाजि खरीद,
जननी-पद पर हों बलिदान॥

आओ खोज निकालें यन्त्र,
जिससे रहे न हम परतन्त्र।
फूंके कान-कान मे मन्त्र,
बन जायें स्वाधीन-स्वतन्त्र॥

हल्दीघाटी - अवनी पर,
सड़ती थी बिखरी लाशे।
होती थी घृणा घृणा को,
बदबू करती थी लाशे॥

चतुर्दश सर्ग

छानबे पंक्ति

रजनी भर तड़प तड़प कर,
घन ने आँसू बरसाया ।।
लेकर संताप सवेरे,
धीरे से दिनकर आया ।।

था लाल वदन रोने से,
चिन्ता का भार लिये था।
शव-चिता जलाने को वह,
कर मे अंगार लिये था ।।

निशि के भीगे मुरदों पर,
उतरी किरणों की माला।,
बस लगी जलाने उनको
रवि की जलती कर-ज्वाला ।।

लोहू जमने से लोहित,
सावन की नीलम घासे।
सरदी-गरमी से सड़कर,
बजबजा रही थी लाशे ।।

आँखें निकाल उड़ जाते,
क्षण भर उड़कर आ जाते,
शव-जीभ खीच कर कौवे,
चुभला-चुभला कर खाते ।।

वर्षा-सिंचित विष्ठा को,
ठोरों से बिखरा देते।
कर काँव-काँव उसको भी,
दो चार कवर ले लेते॥

गिरि पर डगरा डगराकर,
खोपड़ियाँ फोर रहे थे।
मल-मूत्र-रुधिर चीनी के–
शरबत सम घोर रहे थे॥

भोजन मे श्वान लगे थे,
मुरदे थे भू पर लेटे।
खा मांस, चाट लेते थे,
चटनी सम बहते नेटे॥

लाशों के फार उदर को,
खाते खाते लड़ जाते।
पोटी पर थूथुन देकर,
चर-चर-चर नसे चबाते॥

तीखे दाँतों से हय के–
दाँतों को तोर रहे थे।
लड़-लड़ कर, झगड़-झगड़ कर,
वे हाड़ चिचोर रहे थे॥

जम गया जहाँ लोहू था,
कुत्ते उस लाल मही पर।
इस तरह टूटते जैसे,
मार्जार सजाव दही पर॥

लड़ते-लड़ते जब असि पर,
गिरते कटकर मर जाते।
तब इतर श्वान उनको भी,
पथ-पथ घसीट कर खाते॥

आँखों के निकले कीचर,
खेखार-लार, मुरदों की।
सामोद चाट करते थे,
दुर्दशा मतग-रदो की।।

उनके न दाँत धँसते थे,
हाथी की दृढ़-खालों मे।
वे कभी उलझ पड़ते थे,
अरि-दाढ़ी के बालों मे।।

चोटी घसीट चढ़ जाते,
गिरि की उन्नत चोटी पर।
गुरना-गुरना भिड़ते थे,
वे सड़ी-गली पोटी पर।।

ऊपर मँडरा मँडरा कर,
चीलें बिट कर देती थीं।
लोहू-मय लोथ झपट कर,
चंगुल में भर लेती थीं।।

पर्वत-वन मे, खोहो मे,
लाशे घसीट कर लाते।
कर गुत्थम-गुत्थ परस्पर,
गीदड़ इच्छा भर खाते।।

दिन के कारण छिप-छिप कर,
तरु-ओट झाड़ियो मे वे--
इस तरह मास चुभलाते,
मानो हों मुख में मेवे।।

खा मेदा सड़ा हुलक कर,
कर दिया वमन अवनी पर।
झट उसे अन्य जम्बुक ने,
खा लिया खीर-सम जी भर।।

पर्वत-शृङ्गों पर बैठी,
थी गीधों की पंचायत।
वह भी उतरी खाने की,
सामोद जान कर सायत ।।

पीते थे पीब उदर की,
बरछी-सम चोंच घुसाकर।
सानन्द घोंट जाते थे,
मुख में शव-नसें घुलाकर।।

हय-नरम-मास खा, नर के—
ककाल मधुर चुभलाते।
कागद-समान कर-कर-कर,
गज-खाल फार कर खाते।।

इस तरह सड़ी लाशें खाकर,
मैदान साफ़ कर दिया तुरत।
युग-युग के लिए महीधर में,
गीधों ने भय भर दिया तुरत ।।

हल्दीघाटी समर का तो,
हो गया धरा पर आज अन्त।
पर हा, उसका ले व्यथा-भार,
वन वन फिरता मेवाड़-कन्त ।।

पंचदश सर्ग

दो सौ छत्तीस पंक्ति

पावस बीता पर्वत पर,
नीलम घासे लहराईं।
कासो की श्वेत ध्वजाएँ,
किसने आकर फहराई।।

नव पारिजात कलिका का—
मारुत आलिङ्गन करता।
कम्पित-तन मुसकाती है,
वह सुरभि-प्यार ले बहता।।

कर स्नान नियति-रमणी ने,
नव हरित वसन है पहना।
किससे मिलने को तन में,
झिलमिल तारो का गहना।।

पर्वत पर, अवनीतल पर,
तरु-तरु के नीलम दल पर।
यह किसका बिछा रजत-पट,
सागर के वक्षःस्थल पर।।

वह किसका हृदय निकलकर,
नीरव नभ पर मुसकाता?
वह कौन सुधा वसुधा पर,
रिमझिम-रिमझिम बरसाता।।

तारक मोती का गजरा
है कौन उसे पहनाता?
नभ के सुकुमार हृदय पर,
वह किसको कौन रिझाता॥

पूजा के लिए किसी की,
क्या नभ-सर कमल खिलाता?
गुदगुदा सती रजनी को,
वह कौन छली इतराता॥

वह झूम-झूम कर किसको,
नव नीरव-गान सुनाता?
क्या शशि तारक मोती से,
नभ नीलम थाल सजाता॥

जब से शशि को पहरे पर,
दिनकर सो गया जगाकर।
कविता-सी कौन छिपी है,
यह ओढ़ रुपहली चादर॥

क्या चाँदी की डोरी से,
वह नाप रहा है दूरी?
या शेष जगह भू-नभ की,
करता ज्योत्स्ना से पूरी॥

इस उजियाली में जिसमें,
हँसता है कलित-कलाधर।
है कौन खोजता किसको,
जुगनू के दीप जलाकर॥

लहरों के मृदु अधरों का,
विधु झुक-झुक करता चुम्बन।
घुल कोंई के प्राणों में,
वह बना रहा जग निधुवन॥

घूँघट-पट खोल शशी से,
हँसती है कुमुद-किशोरी।
छवि देख-देख बलि जाती,
बेसुध अनिमेष चकोरी।।

इन दूबों के टुनगों पर
किसने मोती बिखराये?
या तारे नील-गगन से,
स्वच्छन्द विचरने आये।।

या बँधी हुई हैं अरि की,
जिसके कर में हथकड़ियाँ।।
उस पराधीन जननी की,
बिखरी आँसू की लड़ियाँ।।

इस स्मृति से ही राणा के,
उर की कलियाँ मुरझाई।
मेवाड़-भूमि को देखा,
उसकी आँखे भर आई।।

अब समझा साधु सुधाकर,
कर से सुहला सुहलाकर।
दुर्दिन में मिटा रहा है,
उर-ताप सुधा बरसाकर।।

जननी-रक्षा-हित जितने,
मेरे रणधीर मरे है।
वे ही विस्तृत अम्बर पर,
तारों के मिस बिखरे है।।

मानव - गौरव - हित मैंने,
उन्मत्त लड़ाई छेड़ी।
अब पड़ी हुई है माँ के–
पैरों में . अरि की बेड़ी।।

पर हाँ, जब तक हाथों में,
मेरी तलवार बनी है।
सीने मे घुस जाने को,
भाले की तीव्र अनी है।।

जब तक नस में शोणित है,
श्वासों का ताना-बाना।
तब तक अरि-दीप बुझाना–
है बन बन कर परवाना।।

घासों की रूखी रोटी,
जब तक सोने का पानी।
तब तक जननी-हित होगी,
कुर्बानी पर कुर्बानी।।

राणा ने विधु तारों को,
अपना प्रण-गान सुनाया।
उसके उस गान-वचन को,
गिरि-कण-कण ने दुहराया।।

इतने मे अचल-गुहा से,
शिशु-क्रन्दन की ध्वनि आई।
कन्या के क्रन्दन में थी,
करुणा की व्यथा समाई।।

उसमें कारागृह से थी,
जननी की अचिर रिहाई।
या उसमें थी राणा से,
माँ की चिर छिपी जुदाई।।

भालों से, तलवारों से,
बरछों से बौछारों से।
जिसका न हृदय चंचल था,
वैरी - दल - ललकारों से।।

दो दिन पर मिलती रोटी,
वह भी तृण की, घासों की,
कंकड़-पत्थर की शय्या,
परवाह न आवासों की।।

लाशो पर लाशें देखी,
घायल कराहते देखे।
अपनी आँखो से अरि को,
निज दुर्ग ढाहते देखे।।

तो भी उस वीर-व्रती का,
था अचल हिमाचल-सा मन।
पर हिम-सा पिघल गया वह,
सुनकर कन्या का क्रन्दन।।

आँसू की पावन गंगा,
आँखों से झर-झर निकली।
नयनो के पथ से पीडा,
सरिता-सी बहकर निकली।।

भूखे - प्यासे - कुम्हिलाये,
शिशु को गोदी में लेकर।
पूछा, "तुम क्यों रोती हो,
करुणा को करुणा देकर"।।

अपनी तुतली भाषा में,
वह सिसक सिसक कर बोली।
जलती थी भूख तृषा की,
उसके अन्तर मे होली।।

'हा, छही न जाती मुझसे,
अब आज भूख की ज्वाला।
कल छे ही प्याछ लगी है,
होलहा हिदय मतवाला।।

माँ ने घाछों की लोती,
मुझको दी थी खाने को।
छोते का पानी देकल,
वह बोली भग जाने को॥

अम्मा छे दूल यहीं पल,
छूखी लोती खाती थी।
जो पहले छुना चुकी हूँ,
वह देछ-गीत गाती थी॥

छच कहती केवल मैंने,
एकाध कवल खाया था।
तब तक बिलाव ले भागा,
जो इछीलिए आया था॥

छुनती हूँ तू लाजा है,
मैं प्याली छौनी तेली।
क्या दया न तुझको आती,
यह दछा देख कल मेली॥

लोती थी तो देता था,
खाने को मुझे मिथाई।
अब खाने को लोती तो,
आती क्यों तुझे लुलाई॥

वह कौन छत्रु है जिछने,
छेना का नाछ किया है?
तुझको, माँ को, हम छबको,
जिछने बनबाछ दिया है॥

यक छोती छी पैनी थी,
तलवाल मुझे भी दे दे।
मैं उछको माल भगाऊँ,
छन मुझको लन कलने दे॥'

शीत ऋतु

कन्या की बाते सुनकर,
रो पड़ी अचानक रानी।
राणा की आँखों से भी,
अविरल बहता था पानी।।

उस निर्जन मे बच्चों ने,
माँ माँ कह कह कर रोया।
लघु-शिशु विलाप सुन सुनकर,
धीरज ने धीरज खोया।।

वह स्वतन्त्रता कैसी है,
वह कैसी है आजादी।
जिसके पद पर बच्चों ने,
अपनी मुक्ता बिखरा दी।।

सहने की सीमा होती,
सह सका न पीड़ा अन्तर।
हा, सन्धि-पत्र लिखने को,
वह बैठ गया आसन पर।।

कह 'सावधान' रानी ने,
राणा का थाम लिया कर।
बोली अधीर पति से वह,
कागद मसिपात्र छिपाकर।।

"तू भारत का गौरव है,
तू जननी - सेवा - रत है।
सच कोई मुझसे पूछे,
तो तू ही तू भारत है।।

तू प्राण सनातन का है,
मानवता का जीवन है।
तू सतियों का अंचल है,
तू पावनता का धन है।।

यदि तू ही कायर बनकर,
वैरी से सन्धि करेगा।
तो कौन भला भारत का–
बोझा माथे पर लेगा ।।

लुट गये लाल गोदी के,
तेरे अनुगामी होकर।
कितनी विधवायें रोती,
अपने प्रियतम को खोकर ।।

आजादी की लालच दे,
झाला का प्रान लिया है।
चेतक - सा वाजि गँवाकर,
पूरा अरमान किया है ।।

तू सन्धि-पत्र लिखने का,
कह कितना है अधिकारी ?
जब बन्दी माँ के दृग से,
अब तक आँसू है जारी ।।

थक गया समर से तो अब,
रक्षा का भार मुझे दे।
मै चण्डी - सी बन जाऊँ,
अपनी तलवार मुझे दे" ।।

मधुमय कटु बाते सुनकर,
देखा ऊपर अकुलाकर ।
कायरता पर हँसता था,
तारों के साथ निशाकर ।।

झाला सम्मुख मुसकाता,
चेतक धिक्कार रहा है।
असि चाह रही कन्या भी,
तू आँसू ढार रहा है ।।

मर मिटे वीर जितने थे,
वे एक एक कर आते।
रानी की जय जय करते,
उससे है आँख चुराते।।

हो उठा विकल उर-नभ का,
हट गया मोह-घन काला।
देखा वह ही रानी है,
वह ही अपनी तृण-शाला।।

बोला वह अपने कर में,
रमणी-कर थाम "क्षमा कर।
हो गया निहाल जगत में,
मैं तुझ-सी रानी पाकर"।।

इतने में वैरी-सेना ने,
राणा को घेर लिया आकर।
पर्वत पर हाहाकार मचा,
तलवारें झनकी बल खाकर।।

तब तक आये रणधीर भील,
अपने कर में हथियार लिये।
पा उनकी मदद छिपा राणा,
अपना भूखा परिवार लिये।।

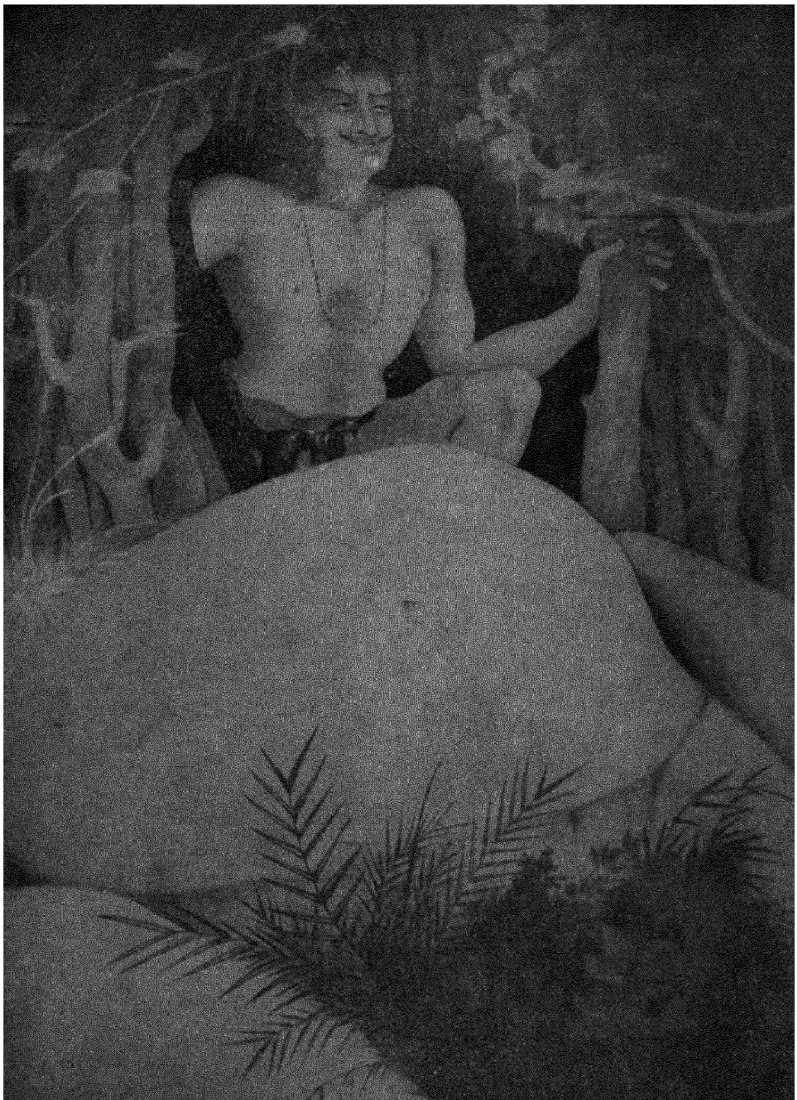

[कलाभवन, काशी के सौजन्य से] वनवासी प्रताप

पंद्रहवाँ सर्ग

दो सौ चौंसठ पंक्ति

थी आधी रात अँधेरी,
तम की घनता थी छाई।
कमलो की आँखो मे भी,
कुछ देता था न दिखाई।।

पर्वत पर, घोर विजन मे,
नीरवता का शासन था।
गिरि अरावली सोया था,
सोया तमसावृत वन था।।

धीरे से तरु के पल्लव,
गिरते थे भू पर आकर।
नीडो मे खग सोये थे,
सन्ध्या को गान सुनाकर।।

नाहर अपनी माँदो मे,
मृग वन-लतिका-झुरमुट मे।
दृग मूँद सुमन सोये थे,
पंखुरियों के सम्पुट मे।।

गाकर मधु-गीत मनोहर,
मधुमाखी मधुछातों पर।
सोई थी बाल तितलियाँ,
मुकुलित नव जलजातों पर।।

तिमिरालिंगन से छाया,
थी एकाकार निशा भर।
सोई थी नियति अचल पर,
ओढ़े घनतम की चादर॥

आँखों के अन्दर पुतली,
पुतली में तिल की रेखा।
उसने भी उस रजनी मे,
केवल तारों को देखा॥

वे नभ पर काँप रहे थे,
था शीत-कोप कँगलों में।
सूरज-मयक सोये थे,
अपने अपने बँगलो मे॥

निशि-अँधियाली मे निद्रित,
मारुत रुक रुक चलता था।
अम्बर था तुहिन बरसता,
पर्वत हिम-सा गलता था॥

हेमन्त-शिशिर का शासन,
लम्बी थी रात विरह-सी।
सयोग-सदृश लघु वासर,
दिनकर की छवि हिमकर-सी॥

निर्धन के फटे पुराने,
पट के छिद्रों से आकर।
शर-सदृश हवा लगती थी,
पाषाण - हृदय दहलाकर॥

लगती चन्दन - सी शीतल,
पावक की जलती ज्वाला।
बाड़व भी काँप रहा था,
पहने तुषार की माला॥

जग-अधर विकल हिलते थे,
चलदल के दल-से थर-थर।
ओसो के मिस नभ-दृग से,
बहते थे आँसू झर-झर।।

यव की कोमल बालो पर,
मटरो की मृदु फलियो पर।
नभ के आँसू बिखरे थे,
तीसी की नव कलियों पर।।

घन-हरित चने के पौधे,
जिनमे कुछ लहुरे जेठे।
भिग गये ओस के जल से,
सरसो के पीन मुरेठे।।

वह शीतकाल की रजनी;
कितनी भयदायक होगी।
पर उसमे भी करता था,
तप एक वियोगी योगी।।

वह नीरव निशीथिनी मे,
जिसमे दुनिया थी सोई।
निर्झर की करुण-कहानी,
बैठा सुनता था कोई।।

उस निर्झर के तट पर ही,
राणा की दीन-कुटी थी।
वह कोने में बैठा था,
कुछ वंकिम - सी भृकुटी थी।।

वह कभी कथा झरने की,
सुनता था कान लगाकर।
वह कभी सिहर उठता था,
मारुत के झोके खाकर।

नीहार - भार - नत मन्थर,
निर्झर के सीकर लेकर।
जब कभी हवा चलती थी,
पर्वत को पीड़ा देकर॥

तब वह कथरी के भीतर,
आहें भरता था सोकर।
वह कभी याद जननी की–
करता था पागल होकर॥

वह कहता था वैरी ने–
मेरे गढ़ पर गढ जीते।
वह कहता रोकर, माँ की,
अब सेवा के दिन बीते॥

यद्यपि जनता के उर में,
मेरा ही अनुशासन है।
पर इंच-इंच भर भू पर,
अरि का चलता शासन है॥

दो चार दिवस पर रोटी,
खाने को आगे आई।
केवल सूरत भर देखी,
फिर भगकर जान बचाई॥

अब वन वन फिरने के दिन,
मेरी रजनी जगने की।
क्षण आँखों के लगते ही,
आई नौबत भगने की॥

मैं बझा रहा हूँ शिशु को,
कह - कहकर समर-कहानी।
बुद-बुद कुछ पका रही है,
हा, सिसक सिसक कर रानी॥

आँसू जल पोछ रही है,
चिर क्रीत पुराने पट से।
पानी पनिहारिन - पलके,
भरती अन्तर-पनघट से ।।

तब तक चमकी वैरी-असि,
मै भगकर छिपा अनारी।
काँटो के पथ मे भागी,
हा, वह मेरी सुकुमारी।।

तृण-घास-पात का भोजन,
रह गया वही पकना ही।
मै झुरमुट के छिद्रो से,
रह गया उसे तकना ही।।

चलते चलते थकने पर,
बैठा तरु की छाया मे।
क्षण भर ठहरा सुख आकर,
मेरी जर्जर - काया मे।।

जल-हीन रो पडी रानी,
बच्चो को तृपित रुलाकर।
कुश-कण्टक की शय्या पर,
वह सोई उन्हे सुलाकर।।

तब तक अरि के आने की,
आहट कानों मे आई।
बच्चो ने आँखे खोली,
कह-कह कर माई-माई।।

रव के भय से शिशु-मुख को,
वल्कल से बाँध भगे हम।
गह्वर मे छिपकर रोने–
रानी के साथ लगे हम।।

वह दिन न अभी भूला है,
भूला न अभी गह्वर है।
सम्मुख दिखलाई देता,
वह आँखो का झर-झर है ।।

जब सहन न होता, उठना,
लेकर तलवार अकेला।
रानी कहती न अभी है,
सगर करने की बेला।।

तब भी न तनिक रुकता तो–
बच्चे रोने लगते है।
खाने को दो कह-कह कर,
व्याकुल होने लगते है ।।

मेरे निर्बल हाथो से,
तलवार तुरत गिरती है।
इन आँखो की सरिता मे,
पुतली-मछली तिरती है ।।

हा, क्षुधा-तृषा से आकुल,
मेरा यह दुर्बल तन है।
इसको कहते जीवन क्या,
यह ही जीवन, जीवन है।

अब जननी के हित मुझको,
मेवाड छोड़ना होगा।
कुछ दिन तक माँ से नाता,
हा, विवश तोडना होगा ।।

अब दूर विजन में रहकर,
राणा कुछ कर सकता है।
जिसकी गोदी मे खेला,
उसका ऋण भर सकता है।।

यह कह कर उसने निशि मे,
अपना परिवार जगाया।
आँखों मे आँसू भरकर,
क्षण उनको कण्ठ लगाया।।

बोला--"तुम लोग यही मे,
माँ का अभिवादन कर लो।
अपने अपने अन्तर मे,
जननी की सेवा भर लो।।

चल दो, क्षण देर करो मत,
अब समय न है रोने को।
मेवाड न दे सकता है,
तिलभर भी भू सोने को।।

चल किसी विजन-कोने मे,
अब शेष बिता दो जीवन।
इस दुखद भयावह ज्वर की,
यह ही है दवा सजीवन"।।

सुन व्यथा-कथा रानी ने,
अँचरे का कोना धरकर।
कर लिया मूक अभिवादन
आँखो मे पानी भरकर।।

हा, काँप उठा रानी के,
तन-पट का धागा-धागा।
कुछ मौन-मौन जब माँ से,
अचल पसार कर माँगा।।

बच्चों ने भी रो-रोकर,
की विनय वन्दना माँ की।
पत्थर भी पिघल रहा था,
वह देख-देख कर झाँकी।।

राणा ने मुकुट नवाया,
चलने की हुई तयारी।
पत्नी शिशु लेकर आगे
पीछे पति वल्कल-धारी।।

तत्काल किसी के पद का,
खुर-खुर रव दिया सुनाई।
कुछ मिली मनुज की आहट,
फिर जय-जय की ध्वनि आई।।

राणा की जय राणा की—
जय-जय राणा की जय हो।
जय हो प्रताप की जय हो,
राणा की सदा विजय हो।।

वह ठहर गया रानी से,
बोला—"मैं क्या हूँ सोता?
मैं स्वप्न देखता हूँ या,
भ्रम से ही व्याकुल होता।।

तुम भी सुनती या मैं ही,
श्रुति-मधुर-नाद सुनता हूँ?
जय जय की मन्थर ध्वनि में,
मैं मुक्तिवाद सुनता हूँ"।।

तब तक भामा ने फेंकी,
अपने हाथों की लकुटी।
मेरे शिशु कह राणा के—
पैरों पर रख दी त्रिकुटी।।

आँसू से पद को धोकर,
धीमे-धीमे वह बोला—
"यह मेरी सेवा" कहकर,
थैलों के मुह को खोला।।

खर-खर-खर मणिमुद्रा की,
मुक्ता की राशि लगा दी।
रत्नों की ध्वनि से वन की–
नीरवता सकल भगा दी।।

"एकत्र करो इस धन से,
तुम सेना वेतन-भोगी।
तुम एक बार फिर जूझो,
अब विजय तुम्हारी होगी।।

कारागृह में बन्दी माँ,
निन करती याद तुम्हे है।
तुम मुक्त करो जननी को,
यह आशीर्वाद तुम्हे है"।।

वह निर्बल वृद्ध तपस्वी,
लग गया हाँफने कह कर।
गिर पडी लार अवनी पर,
उसके आनन से बहकर।।

वह कह न सका कुछ आगे,
सब भूल गया आने पर।
कटि-जानु थामकर बैठा,
वह भू पर थक जाने पर।।

राणा ने गले लगाया,
कायरता धो लेने पर।
फिर बिदा किया भामा को,
घुल-घुल कर रो लेने पर।।

खुल गये कमल-कोषो के,
कारागृह के दरवाजे।
उससे बन्दी अलि निकले,
संगर के बाजे बाजे।।

ऊषा ने राणा -शिर पर,
सोने का ताज पिन्हाया।
उठकर मेवाड़-विजय का,
खग-कुल ने गाना गाया।।

कोमल-कोमल पत्तो में,
फूलो को हँसते देखा।
खिच गई वीर के उर मे,
आशा की पतली रेखा।।

उसको बल मिला हिमालय का,
जननी-सेवा-अनुरक्ति मिली।
वर मिला उसे प्रलयकर का,
उसको चण्डी की शक्ति मिली।।

सूरज का उसको तेज मिला,
नाहर-समान वह तरज उठा।
पर्वत पर झण्डा फहराकर,
सावन-घन-सा वह गरज उठा।।

तलवार निकाली, चमकाई,
अम्बर मे फेरी घूम-घूम।
फिर रखी म्यान मे चम-चम-चम,
खरधार-दुधारी चूम-चूम।।

सप्तदश सर्ग

दो सौ चालीस पंक्ति

फागुन था शीत भगाने को,
माधव की उधर तयारी थी।
वैरी निकालने को निकली,
राणा की इधर सवारी थी ।।

थे उधर लाल वन के पलास,
थी लाल अबीर गुलाल लाल।
थे इधर क्रोध से सगर के–
सैनिक के आनन लाल-लाल ।।

उस ओर काटने चले खेत,
कर मे किसान हथियार लिये।
अरि-कण्ठ काटने चले वीर,
इस ओर भीम तलवार लिये ।।

उस ओर आम पर कोयल ने,
जादू भर कर वशी टेरी।
इस ओर बजाई वीर-व्रती–
राणा प्रताप ने रण-भेरी ।।

सुनकर भेरी का नाद उधर,
रण करने को शहबाज चला ।
लेकर नगी तलवार इधर,
रणधीरो का शिरताज चला ।।

दोनो ने दोनो को देखा,
दोनो की थी उन्नत छाती।
दोनो की निकली एक साथ,
तलवार म्यान से बल खाती।।

दोनो पग-पग बढ चले वीर,
अपनी सेना की राजि लिये।
कोई गज लिये बढा आगे,
कोई अपना वर वाजि लिये।।

सुन-सुन मारू के भैरव रव,
दोनो दल की मुठभेड हुई।
हर-हर कह कर पिल पडे वीर,
वैरी की सेना भेड हुई।।

उनकी चोटी मे आग लगी,
अरि-भुण्ड देखते ही आगे।
जागे पिछले रण के कुन्तल,
उनके उर के साहस जागे।।

प्रलयकर समर-वीरो को,
जो मुगल मिला वह सभय मिला।
वैरी से हल्दीघाटी का—
बदला लेने को समय मिला।।

गज के कराल किलकारो से,
हय के हिन हिन हुङ्कारो से।
बाजो के रव, ललकारो से,
भर गया गगन टकारो से।।

पन्नग-समूह मे गरुड़-सदृश,
तृण मे विकराल कृशानु-सदृश।
राणा भी रण म कूद पड़ा,
घन अन्धकार मे भानु-सदृश।।

राणा-हय की ललकार देख,
राणा की चल-तलावर देख।
देवीर-समर भी काँप उठा,
अविराम वार पर वार देख॥

क्षण क्षण प्रताप की गर्जन सुन,
सुन-सुन भीषण रव बाजो के।
अरि-कफन काँपते थे थर-थर,
घर मे भयभीत बजाजो के॥

आगे अरि-मुण्ड चबाता था,
राणा-हय तीखे दाँतो मे।
पीछे मृत-राजि लगाता था,
वह मार-मार कर लातो मे॥

अवनी पर पैर न रखता था,
अम्बर पर ही वह घोडा था।
भ मे उतरा अरि भाग चले,
चेतक का असली जोडा था॥

अरि-दल की सौ सौ आँखो मे,
उस घोडे को गडते देखा।
नभ पर देखा, भू पर देखा,
वैरी-दल मे लड़ते देखा॥

वह कभी अचल-सा अचल बना,
वह कभी चपलतर तीर बना।
जम गया कभी, वह सिमट गया,
वह दौडा, उड़ा, समीर बना॥

नाहर के सम जगी गज पर,
वह कूद-कूद चढ़ जाता था।
टापों से अरि को खान-खान,
घोड़ा आगे बढ़ जाता था।

यदि उसे किसी ने टोक दिया,
वह महाकाल का काल बना।
यदि उसे किसी ने रोक दिया,
वह महाव्याल विकराल बना।।

राणा को लिये अकेला ही,
रण में दिखलाई देता था।
ले ले कर अरि के प्राणों को,
चेतक का बदला लेता था।।

राणा उसके ऊपर बैठा,
जिस पर सेना दीवानी थी।
कर में हल्दीघाटी वाली,
वह ही तलवार पुरानी थी।।

हय-गज-सवार के शिर को थी,
वह तमक तमक कर काट रही।
वह रुण्ड-मुण्ड से भूतल को,
थी चमक चमक कर पाट रही।।

दुश्मन के अत्याचारों से,
जो उजडी भूमि बिचारी थी।
नित उसे सींचती शोणित से,
राणा की कठिन दुधारी थी।।

वह बिजली-सी चमकी चम चम,
फिर मुगल-घटा में लीन हुई।
वह छप-छप-छप करती निकली,
फिर चमकी, छिपी, विलीन हुई।।

फुफकार भुजगिन - सी करती,
खच-खच सेना के पार गई।
अरि-कण्ठों से मिलती जुलती,
इस पार गई, उस पार गई।।

वह पीकर खून उगल देती,
मस्ती से रण में घूम-घूम।
अरि-शिर उतार कर खा जाती,
वह मतवाली-सी झूम-झूम।।

हाथी-हय-तन के शोणित की,
अपने तन में मलकर रोली।
वह खेल रही थी समर में,
शहबाज-वाहिनी से होली।।

वह कभी श्वेत, अरुणाभ कभी,
थी रंग बदलती क्षण-क्षण में।
गाजर मूली की तरह काट,
शिर बिछा दिये रण-प्रांगण में।।

यह हाल देख वैरी-सेना,
देवीर-समर से भाग चली।
राणा प्रताप के वीरों के—
उर में हिंसा की आग जली।।

लेकर तलावर अपाइन तक,
अरि-अनीकिनी का पीछा कर।
केसरिया झण्डा गाड़ दिया,
राणा ने अपना गढ़ पाकर।।

फिर नदी-बाढ़-सी चली चमू,
रण-मत्त उमड़ती कुम्भलगढ़।
तलवार चमकने लगी तुरत,
उस कठिन दुर्ग पर सत्वर चढ़।।

गढ़ के दरवाजे खोल मुगल,
थे भग निकले पर फेर लिया।
अब्दुल के अभिमानी-दल को,
राणा प्रताप ने घेर लिया।।

इस तरह काट शिर बिछा दिये,
सैनिक जन ने लेकर कृपान।
यव-मटर काट कर खेतो मे,
जिस तरह बिछा देते किसान ।।

मेवाड़-देश की तलवारें,
अरि-रक्त-स्नान से निखर पड़ी।
कोई जन भी जीता न बचा,
लाशों पर लाशे बिखर पडी।।

जय पाकर फिर कुम्भलगढ़ पर,
राणा का झण्डा फहर उठा।
वह चपल लगा देने ताडन,
अरि का सिहासन थहर उठा।।

फिर बढ़ी आग की तरह प्रबल,
राणा प्रताप की जन-सेना।
गढ़ पर गढ़ ले ले बढ़ती थी,
वह आँधी-सी सन-सन सेना।।

वह एक साल ही के भीतर,
अपने सब दुर्ग किले लेकर।
रणधीर-वाहिनी गरज उठी,
वैरी-उर को चिन्ता देकर।।

मेवाड हँसा, फिर राणा ने,
जय-ध्वजा किले पर फहराई।
माँ धूल पोंछकर राणा की—
सामोद फूल-सी मुसकाई ।।

घर-घर नव बन्दनवार बँधे,
बाजे शहनाई के बाजे।
जल भरे कलश दरवाजों पर,
आये सब राजे महराजे।।

मगल के मधुर स-राग गीत,
मिल-मिल कर सतियो ने गाय।
गाकर गायक ने विजय-गान,
श्रोता जन पर मधु बरसाये॥

कवियो ने अपनी कविता मे,
राणा के यश का गान किया।
भूपो ने मस्तक नवा-नवा,
सिहासन का सम्मान किया॥

धन दिया गया भिखमगो को,
अविराम भोज पर भोज हुआ।
दीनो को नूतन वस्त्र मिले,
वर्षो तक उत्सव रोज हुआ॥

हे विश्ववन्द्य, हे करुणाकार,
तेरी लीला अद्भुत अपार।
मिलती न विजय, यदि राणा का
होता न कही तू मददगार॥

तू क्षिति मे, पावक मे, जल मे,
नभ मे, मारुत मे वर्त्तमान।
तू अजपा मे, जग की साँसे--
कहती सोऽह तू है महान्॥

इस पुस्तक का अक्षर-अक्षर,
प्रभु, तेरा ही अभिराम-धाम।
हल्दीघाटी का वर्ण-वर्ण,
कह रहा निरन्तर राम-राम॥

पहले सृजन के एक, पीछे--
तीन, तू अभिराम है।
तू विष्णु है, तू शम्भु है,
तू विधि, अनन्त प्रणाम है॥

जल में अजन्मा, तव करों से,
बीज बिखराया गया।
इसमें चराचर सृजन-कर्त्ता–
तू सदा गाया गया॥

तू हार-सूत्र-समान सबमें,
एक - सा रहता सदा।
तू सृष्टि करता, पालता,
संहार करता सर्वदा॥

स्त्री-पुरुष तन के भाग दो,
फल सकल करुणा-दृष्टि के।
वे ही बने माता पिता–
उत्पत्ति-वाली सृष्टि के॥

तेरी निशा जो दिवस सोने–
जागने के हैं बने।
वे प्राणियों के प्रलय हैं,
उत्पत्ति-क्रम से हैं बने॥

तू विश्व-योनि, अयोनि है,
तू विश्व का पालक प्रभो!
तू विश्व-आदि अनादि है,
तू विश्व-संचालक प्रभो!

तू जानता निज को तथा,
निज सृष्टि है करता स्वयम्।
तू शक्त है अतएव अपने–
आपको हरता स्वयम्॥

द्रव, कठिन, इन्द्रिय-ग्राह्य और–
अग्राह्य, लघु, गुरु युक्त है।
अणिमादिमय है कार्य, कारण,
और उनसे मुक्त है॥

आरम्भ होता तीन स्वर मे,
तू वही ओंकार है।
फल-कर्म जिनका स्वर्ग मख है,
तू वही अविकार है।।

जो प्रकृति मे रत हैं तुझे वे,
तत्त्व-वेत्ता कह रहे।
फिर प्रकृतिद्रष्टा भी तुझी को,
ब्रह्म-वेत्ता कह रहे।।

तू पितृगण का भी पिता है,
राम-राम हरे हरे।
दक्षादि का भी सृष्टि-कर्त्ता,
और पर मे भी परे।।

तू हव्य, होता, भोज्य, भोक्ता,
तू सनातन है प्रभो!
तू वेद्य, ज्ञाता, ध्येय, ध्याता,
तू पुरातन है प्रभो!

हे राम, हे अभिराम,
तू कृतकृत्य कर अवतार मे।
दबती निरन्तर जा रही है,
मेदिनी अघ-भार मे।।

राणा-सदृश तू शक्ति दे,
जननी-चरण-अनुरक्ति दे।
या देश-सेवा के लिए—
झाला-सदृश ही भक्ति दे।।

परिशिष्ट

एक सौ आठ पंक्ति

मेवाड़-सिंहासन

यह एकलिग का आसन है,
इस पर न किसी का शासन है।
नित सिहक रहा कमलासन है,
यह सिहासन, सिहासन है।।

यह सम्मानित अधिराजो से,
अर्चित है राज-समाजों से।
इसके पद-रज पोछे जाते,
भूपो के शिर के ताजो से।।

इसकी रक्षा के लिए हुई,
कुर्बानी पर कुर्बानी है।
राणा ! तू इसकी रक्षा कर,
यह सिहासन अभिमानी है।।

खिलजी-तलवारो के नीचे,
थरथरा रहा था अवनी-तल।
वह रत्नसिह था रत्नसिह,
जिसने कर दिया उसे शीतल।।

मेवाड-भूमि-बलिवेदी पर,
होते बलि शिशु रनिवासों के।
गोरा-बादल-रण-कौशल से,
उज्ज्वल पन्ने इतिहासों के।।

जिसने जौहर को जन्म दिया,
वह वीर पद्मिनी रानी है।
राणा! तू इसकी रक्षा कर,
यह सिहासन अभिमानी है॥

मूँजा के शिर के शोणित मे,
जिसके भाले की प्यास बुझी।
हम्मीर वीर यह था जिसकी—
असि वैरी-उर कर पार जुझी॥

प्रण किया वीरवर चूँडा ने,
जननी-पद-सेवा करने का।
कुम्भा ने भी व्रत ठान लिया,
रत्नो से अचल भरने का॥

यह वीर-प्रसविनी वीर-भूमि,
रजपूती की रजधानी है।
राणा! तू इसकी रक्षा कर,
यह सिहासन अभिमानी है॥

जयमल ने जीवन-दान किया,
पत्ता ने अर्पण प्रान किया।
कल्ला ने इसकी रक्षा मे,
अपना सब कुछ कुर्बान किया॥

साँगा को अस्सी घाव लगे,
मरहम-पट्टी थी आँखो पर।
तो भी उसकी असि बिजली-सी,
फिर गई छपाछप लाखो पर॥

अब भी करुणा की करुण-कथा,
हम सबको याद जबानी है।
राणा! तू इसकी रक्षा कर,
यह सिहासन अभिमानी है॥

क्रीडा होती हथियारों से,
होती थी केलि कटारों से।
असि-धार देखने को उँगली,
कट जाती थी तलवारों से।।

हल्दीघाटी का भैरव-पथ,
रग दिया गया था खूनो से।
जननी-पद-अर्चन किया गया,
जीवन के विकच प्रसूनों से।।

अब तक उस भीषण घाटी के,
कण-कण की चढ़ी जवानी है।
राणा! तू इसकी रक्षा कर,
यह सिहासन अभिमानी है।।

भीलो मे रण-झङ्कार अभी,
लटकी कटि मे तलवार अभी।
भोलेपन मे ललकार अभी,
आँखो मे है अगार अभी।।

गिरिवर के उन्नत-शृगो पर,
तरु के मेवे आहार बने।
इसकी रक्षा के लिए शिखर थे—
राणा के दरबार बने।।

जावरमाला के गह्वर मे,
अब भी तो निर्मल पानी है।
राणा! तू इसकी रक्षा कर,
यह सिहासन अभिमानी है?

चूँडावत ने तन भूषित कर,
युवती के शिर की माला से।
खलबली मचा दी मुगलों मे,
अपने भीषण-तम भाला से।।

घोड़े को गज पर चढा दिया,
'मत मारो' मुगल-पुकार हुई।
फिर राजसिंह-चूँडावत से.
अवरंगजेब की हार हुई।।

वह चारुमती रानी थी–
जिसकी चेरि बनी मुगलानी है।
राणा! तू इसकी रक्षा कर,
यह सिंहासन अभिमानी है।।

कुछ ही दिन बीते फतहसिंह,
मेवाड़-देश का शासक था।
वह राणा-तेज उपासक था,
तेजस्वी था अरि-नाशक था।।

उसके चरणों को चूम लिया,
कर लिया समर्चन लाखो ने।
टकटकी लगा उसकी छबि को,
देखा कर्जन की आँखों ने।।

सुनता हूँ उस मरदाने की,
दिल्ली की अजब कहानी है।
राणा! तू इसकी रक्षा कर,
यह सिंहासन अभिमानी है।।

तुझमें चूँडा-सा त्याग भरा,
बापा-कुल का अनुराग भरा।
राणा-प्रताप - सा रग-रग में,
जननी-सेवा का राग भरा।।

अगणित-उर शोणित से सिंचित,
इस सिंहासन का स्वामी है।
भूपालों का भूपाल अभय,
राणा-पथ का तू गामी है।।

दुनिया कुछ कहती है सुन ले,
यह दुनिया तो दीवानी है।
राणा ! तू इसकी रक्षा कर,
यह सिंहासन अभिमानी है।।

शुभम्